मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 94 • वर्ष 11, अंक 1 • मार्च 2021 • पाँच रुपये • 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

फ़ासिस्ट सरकार द्वारा प्रायोजित दिल्ली दंगों का एक साल 4

मज़दूर आन्दोलन में नौसिखियापन और जुझारू अर्थवाद की प्रवृत्ति से लड़ना होगा 7

देविन्दर शर्मा और उनका “अर्थशास्त्र” और राजनीति 9

सिकुड़ती अर्थव्यवस्था, बढ़ती असमानता

जीना है तो लड़ना होगा !

सम्पादक की ओर से

पिछले साल मार्च में शुरू हुए लॉकडाउन और उसके बाद के महीनों में देश के करोड़ों लोगों का रोज़गार छिन गया। बहुत बड़ी आबादी दो वक़्त की रोटी के लिए भी मुहताज हो गयी। बेरोज़गारी, भूख और अभाव का यह सिलसिला लगातार जारी है। बेलगाम बढ़ती महँगाई ग़रीबों की थाली को और भी ख़ाली करती जा रही है। दूसरी ओर, देश के सबसे बड़े अमीरों की दौलत में बेहिसाब बढ़ोत्तरी हो रही है। महामारी के दौरान मुकेश अम्बानी ने हर घण्टे जितनी कमाई की, उतने पैसे कमाने के लिए एक अकुशल मज़दूर को 10,000 साल तक काम करना पड़ेगा! इतना ही नहीं, देश के ऊपर के 100 अरबपतियों की दौलत में पिछले एक साल के दौरान 14 लाख करोड़ रुपये का इज़ाफ़ा हुआ है।

यह स्थिति कोई अपवाद नहीं है। पूँजीवाद का नियम है। महामारी के पहले भी असमानता तेज़ी से बढ़ रही थी; सिर्फ़ अपने देश में ही नहीं, पूरी दुनिया में। महामारी और उसके पहले से जारी मोदी सरकार की नीतियों ने इसकी रफ़्तार को बढ़ा दिया है। आने वाला समय देश के मेहनतकशों के लिए और भी मुश्किलें लेकर आने वाला है। सरकार और उसके भोंपू चाहे जितनी ग़ुलाबी तस्वीर पेश करने की कोशिश करें, आँकड़े बता रहे हैं कि अर्थव्यवस्था तेज़ी से सिकुड़ रही है। उद्योग अपनी क्षमता से कम उत्पादन कर रहे हैं, नये उद्योग लग नहीं रहे हैं, खेती पहले से संकट में है। ऐसे में रोज़गार बढ़ना बेहद मुश्किल है। जो रोज़गार हैं वहाँ भी मज़दूरी घट रही है और अनिश्चितता बढ़ रही है। कम्पनियाँ अपने मुनाफ़े को बनाये रखने के लिए मज़दूरी और वेतन में तरह-तरह से कटौती कर रही हैं। आने वाले दौर में इसे बढ़ते ही जाना है।

अभी से हालत यह है कि आम लोग पहले से भी कम खा रहे हैं। खाने-पीने, दवा-इलाज, बच्चों की पढ़ाई, हर चीज़ में कटौती कर रहे हैं। ज़्यादातर ग़रीबों के पास तो कोई बचत होती ही नहीं, जिनके पास थोड़ी बहुत बचत है, वे जीने के लिए उसे भी ख़र्च कर रहे हैं। जिनके पास कुछ बेचने को है वे एक-एक करके अपनी चीज़ें बेचकर गुज़ारा कर रहे हैं। जिनके पास बेचने के लिए सिर्फ़ अपनी मेहनत और हुनर है, वे उसे पहले से कम दाम पर बेचने को मजबूर हैं। मोदी सरकार के लाये चार लेबर कोड मालिकों के लिए मज़दूरों के शोषण को आसान बनाने के साथ ही इसके विरुद्ध लड़ना पहले से भी मुश्किल बना देंगे। अपनी मज़दूरी बढ़वाना तो दूर, वास्तविक मज़दूरी को बनाये रखना भी कठिन हो जायेगा।

ऐसे में देश की आम मेहनतकश जनता के सब्र का प्याला छलकने लगा है, मगर जनता की गाढ़ी कमाई से बड़े पूँजीपतियों को तरह-तरह के तोहफ़े लुटाये जा रहे हैं। कहीं से कोई विरोध न हो, इसलिए जनता को दबाने, कुचलने, उसका मुँह बन्द करने, मूल मुद्दों से बहकाने और आपस में बाँटने के तमाम हथकण्डे अपनाये जा रहे हैं। यही वजह है कि कॉरपोरेट मीडिया के चारण-भाट “अर्थव्यवस्था के करवट लेने” का झूठ परोसने के लिए धमाल मचाये हुए हैं। मध्यवर्ग का ऊपरी मलाईमार तबक़ा भी इस ‘’विकास’’ की नशीली धुन पर थिरक रहा है। मध्यवर्ग के जिस हिस्से पर अर्थव्यवस्था के जिस संकट की मार पड़ रही है, उसके भी एक बड़े हिस्से को मन्दिर, राष्ट्रवाद और मुस्लिम विरोध की ख़ुराकें देकर शान्त रखने में संघ गिरोह का प्रचार तंत्र अभी कामयाब है।

मगर असलियत क्या है? क़रीब एक दशक पहले 2012 में घरेलू बचत का हिस्सा सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 24 प्रतिशत था जो 2018 में ही घट कर 17 प्रतिशत हो गया था। यानी कि लोगों

(पेज 8 पर जारी)

डीज़ल, पेट्रोल और गैस से मोदी सरकार ने की बेहिसाब कमाई
फिर भी सरकारी कम्पनियों और जनता की लूट जारी

पिछले क़रीब सात साल के अपने कार्यकाल में मोदी सरकार ने पेट्रोलियम के उत्पादों से सरकारी ख़ज़ाने में में क़रीब पच्चीस लाख करोड़ रुपये से भी ज़्यादा की कमाई की है। मगर उसके बाद भी उसका ख़ज़ाना ख़ाली ही रह रहा है। सरकारी घाटा पूरा करने के नाम पर न केवल मुनाफ़ा देने वाले सार्वजनिक उपक्रमों को औने-पौने दामों पर बेचकर हज़ारों करोड़ रुपये और बटोरे जा रहे हैं, बल्कि ओएनजीसी, एचएएल जैसी अनेक सरकारी कम्पनियों को लूटकर भीतर से खोखला कर दिया गया है। ऊपर से जनता पर नये-नये टैक्स और सेस लगाना जारी है।

मोदी सरकार को आयात किया गया कच्चा तेल बेहद सस्ते दामों पर मिला है। डीलर को मिलने वाला मूल्य पेट्रोल की कीमत का 36 प्रतिशत ही होता है। लेकिन केन्द्र सरकार इस पर 37 प्रतिशत टैक्स वसूलती है और करीब 23 प्रतिशत वैट राज्य सरकारें लगाती हैं। शेष 3-4 प्रतिशत डीलर का कमीशन, ढुलाई खर्च आदि होता है। यानी सरकारों के टैक्स ही हैं जो पेट्रोल की कीमतों को 90 के पार (और कहीं-कहीं 100 के पार) पहुँचा दे रहे हैं।

सरकार की कमाई का अनुमान इसी बात से लगाइए कि पिछले वित्तीय वर्ष की तुलना में इस वर्ष तेल की खपत में 9.8 प्रतिशत गिरावट आने की संभावना है। फिर भी पेट्रोल और डीज़ल पर टैक्सों से केन्द्र सरकार में 82 प्रतिशत की भारी वृद्धि होगी। सिर्फ़ इस वर्ष में मोदी सरकार तेल पर टैक्स से 4 लाख करोड़ रुपये कमायेगी।

सरकार के अलावा रिलायंस और एस्सार (निजी क्षेत्र की तेल शोधन कम्पनियों) ने भी इस दौर में बम्पर कमाई की है। गैस सब्सिडी कम करते-करते लगभग ख़त्म ही कर दी गयी है। लगातार जारी बढ़ोत्तरी के बाद जल्द ही सभी के लिए गैस के दाम 900 रुपये की सीमा पार करने वाले हैं।

इसके अलावा मोदी सरकार ने जीएसटी लागू करके, राज्यों को दी जाने वाली बजटीय सहायता में कटौतियों के ज़रिये, केंद्र की सब्सिडी के कोटे को लगातार कम करके भी क़रीब बीस लाख करोड़ रुपये ज़्यादा कमाये हैं।

इस बेहिसाब नंगी लूट के बाद भी सरकार ख़ुद को घाटे में बता रही है और पूरी बेशर्मी के साथ बेरोज़गारी और महँगाई से तबाह जनता को और भी बुरी तरह निचोड़ने पर आमादा है। उसे भरोसा है कि राम मन्दिर, राष्ट्रवाद और मुस्लिम विरोध के नशे में मस्त जनता से अभी उसे कोई ख़तरा नहीं है। जो भी आवाज़ उठायेंगे उनको क़ैद कर दिया जायेगा, मीडिया तो उनका भोंपू बना ही हुआ है, सोशल मीडिया का मुँह बन्द रखने के लिए भी नये क़ानून बनाये जा रहे हैं।

उन्हें लगता है कि आन्दोलन और विरोध के बावजूद उनकी सत्ता पर कोई ख़तरा नहीं है। अमित शाह अगले 50 साल तक राज करने के दावे करते रहते हैं। हालाँकि किसी को उन्हें अपने पुरखों के इतिहास का यह तथ्य याद दिला देना चाहिए कि हिटलर और उसके साथी 1000 साल तक की योजनाएँ बनाया करते थे। मगर उसके 10 साल के अन्दर ही हिटलर ने अपने बंकर में आत्महत्या कर ली।

आपस की बात

डिलीवरी बॉय का काम करने वाले मज़दूरों का शोषण

मैं सचिन कुमार, उम्र 21 साल, उत्तर पूर्वी दिल्ली के करावल नगर इलाक़े में रहता हूँ। मैं अलग-अलग कम्पनियों के बिस्कुट, सेवईं, मैक्रोनी और पास्ता दुकानों पर सप्लाई करने का काम करता हूँ। मैं सुबह 10 बजे तक काम पर पहुँच जाता हूँ, वहाँ पहुँचने पर मालिक मुझे दुकानों पर पहुँचाने वाले सामान की लिस्ट देता है और फिर मुझे गोदाम से सारा सामान बाहर निकालना होता है, जिसका वज़न लगभग 150 से 200 किलो होता है। इस सारे सामान को दुकानों पर पहुँचाने के लिए स्कूटी, जो मालिक द्वारा दी जाती है, पर लादना होता है। इतना वज़न लेकर स्कूटी चलाना बड़ा मुश्किल होता है, पर मालिक इस परेशानी को नहीं समझता। गाड़ी इतनी ओवरलोड हो जाती है कि इस पर बैठने की जगह भी ठीक से नहीं होती। इतना वज़न लेकर रोड पर चलते हुए हमेशा एक्सीडेण्ट होने का डर बना रहता है। मैं प्रतिदिन 25 से 30 हज़ार का सामान दुकानों पर ले जाता हूँ। मुझे इस काम के महीने में मात्र 8,000 हज़ार रुपये मिलते हैं। मेरे जैसे कई डिलीवरी बॉय हैं जो बहुत कम वेतन में काम करते हैं। अक्सर ही मालिक और दुकानदार बदतमीज़ी से पेश आते हैं। पहले मुझे इस पर बहुत ग़ुस्सा आता था, मैं समझ नहीं पाता था कि हम मज़दूरों की ज़िन्दगी ऐसी ही क्यों होती है, पर जब से मैं बिगुल मज़दूर दस्ता के साथियों से मिला और उनके द्वारा चलाये जा रहे शहीद भगतसिंह पुस्तकालय गया, तब मुझे समझ आने लगा कि हम मज़दूरों की ज़िन्दगी बदतर होने का कारण ये मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था है और हम मज़दूरों को ही इस जनद्रोही व्यवस्था को बदलने की लड़ाई में शामिल होना होगा।

– सचिन कुमार, करावल नगर, दिल्ली

मेरी देशभक्ति का घोषणापत्र

मैं एक भारतीय हूँ। मैं इस देश से प्यार करती हूँ।

मैं इस देश से प्यार करती हूँ, यानी इस देश के लोगों से प्यार करती हूँ।

मैं इस देश के सभी लोगों से प्यार नहीं करती। मैं इस देश में अपनी मेहनत से फसल पैदा करने वाले, कारखानों में काम करने वाले, खदानों में काम करने वाले, बाँध, सड़क और बिल्डिंगें बनाने वाले, स्कूलों-कालेजों में पढ़ने-पढ़ाने वाले और ऐसे तमाम आम लोगों से और उनके बच्चों से प्यार करती हूँ।

मैं उन थोड़े से लुटेरों से प्यार नहीं करती जो कारखानों, फार्मों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, बैंकों आदि के मालिक हैं और मज़दूरों और आम मध्यवर्गीय लोगों की हड्डियाँ निचोड़ते हैं। मैं दलालों, कालाबाजारियों, पूँजीपतियों के टुकड़ों पर पलने वाले और उनकी सेवा करने वाले पूँजीवादी पार्टियों के नेताओं, शासन की मशीनरी को चलाने वाले नौकरशाहों, धार्मिक कट्टरपंथी फासिस्टों, जातिवादी कट्टरपंथी बर्बरों और दंगाइयों से ज़रा भी प्यार नहीं करती। मैं पूँजीवादी मीडिया के उन भाड़े के टट्टुओं से भी प्यार नहीं करती जो चंद सिक्कों पर बिककर सत्ता और थैली के भोंपू बन जाते हैं और अवाम को धर्म, जाति, क्षेत्र आदि के आधार पर बाँटने के लिए झूठ का घटाटोप फैलाते हैं। सिर्फ़ यही नहीं, कि मैं इन तमाम लोगों से प्यार नहीं करती, बल्कि मैं इनसे तहेदिल से नफ़रत करती हूँ। एक देश के भीतर ही इनका देश मेरे देश से अलग है।

मेरी देशभक्ति मुझे बताती है कि इस देश को सुन्दर, खुशहाल, मानवीय और न्यायपूर्ण बनाने के लिए, तथा गैर-बराबरी और अन्याय के सभी रूपों को ख़तम करने के लिए इस देश के भीतर ही शोषक-उत्पीड़क सत्ताधारियों के विरुद्ध एक लम्बी और फैसलाकुन लड़ाई लड़नी होगी। सीमा के आर-पार तनाव इसलिए भड़काए जाते हैं और सारी लडाइयाँ इसलिए होती हैं कि न भारत और न ही पाकिस्तान की जनता अपने -अपने देश के लुटेरे पूँजीपतियों से, उनके लग्गू-भग्गुओं से और साम्राज्यवादियों से लड़ने के लिए संगठित न हो सके।

मैं भारत के आम लोगों से ही नहीं, पाकिस्तान और चीन और अमेरिका और रूस आदि देशों के आम मेहनतक़श लोगों से, यानी पूरी दुनिया की आम जनता से प्यार करती हूँ। मैं भारत के लुटेरों-चोरों और हुक्मरानों से ही नहीं, पाकिस्तान के, और पूरी दुनिया के चोरों-लुटेरों-हुक्मरानों से तहे-दिल से नफ़रत करती हूँ।

मैं इन अर्थों में एक देशभक्त हूँ , पर नोट कीजिए, मैं राष्ट्रवादी कत्तई नहीं हूँ। मेरे लेखे, राष्ट्रवाद और देशभक्ति दो अलहदा चीज़ें हैं।

– **कविता कृष्णपल्लवी** (फ़ेसबुक से)

ओखला के मज़दूरों के जीवन पर एक आरम्भिक रिपोर्ट

(पेज 5 से आगे)

वहाँ डब्बों में भरकर टैंकर का पानी लाना भी बड़ी मशक़्क़त का काम होता है। कई गलियाँ इतनी संकरी हैं कि वहाँ साइकल भी नहीं जा सकती। कमरे बेहद छोटे-छोटे हैं और बच्चों के खेलने के लिए कोई खुली जगह नहीं। खुली गन्दी नालियाँ बहती रहती हैं। पूरी दुनिया का निर्माण करने वाले, आलीशान अट्टालिकाएँ, अपार्टमेण्ट और पांच सितारा होटल बनाने वाले मज़दूरों को इस दुनिया में यही अँधेरा-सीलन भरा, खुली नालियों और बिना पानी वाला कोना मिलता है रहने को।

काम के लम्बे घण्टे और फिर जीने के लिए पानी जुगाड़ना, शौचालय की लाइन में लगना, खाना बनाना, यह पूँजीवादी व्यवस्था समय ही नहीं देती कि कोई कहीं घूमने, सिनेमा देखने, दोस्तों से बातें करने या कुछ अच्छा लिखने-पढ़ने के बारे में सोचे। जिस मशीन पर काम करते हैं वैसे ही एक मशीन से बन जाते हैं। बस फ़र्क़ इतना है कि यह शरीर रूपी मशीन सोचती भी है और इस सोचने की क्षमता से डरे पूँजीपति और सरकार नित नये क़ानून और योजनाएँ बनाकर उसे सोचने से रोकना चाहते हैं। उसके पास सोचने-समझने और एकजुट होने का वक़्त ही न बचे, इसके लिए जीवन परिस्थितियाँ असह्य रूप से कठिन बना देते हैं। फिर उन्हें जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र के नाम पर बाँट देते हैं। इन सब से उठकर मज़दूरों को अपने पूरे वर्ग के बारे में सोचना होगा। पूँजीपति वर्ग शोषण के लिए एकजुट है, मज़दूरों को भी अपने संघर्ष के लिए एकजुट होना होगा।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

घोषणापत्र का प्रपत्र: प्रपत्र 4 (नियम 8 के अन्तर्गत)

समाचार पत्र का नाम	मज़दूर बिगुल
पत्र की भाषा	हिन्दी
आवर्तिता	मासिक
पत्र का खुदरा बिक्री मूल्य	पाँच रुपये
प्रकाशक का नाम	कात्यायनी सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
प्रकाशन का स्थान	निशातगंज, लखनऊ
मुद्रक का नाम	कात्यायनी सिन्हा
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ
मुद्रणालय का नाम	मल्टीमीडियम, 310, संजयगांधी पुरम, फैज़ाबाद रोड, लखनऊ-226016
सम्पादक का नाम	अभिनव सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज लखनऊ-226006
स्वामी का नाम	कात्यायनी सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज लखनऊ-226006

मैं कात्यायनी सिन्हा, यह घोषणा करती हूँ कि उपर्युक्त तथ्य मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार सत्य हैं।

हस्ताक्षर (कात्यायनी सिन्हा)
प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाता का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546, 9971196111
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 8860792320
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

बरगदवाँ, गोरखपुर के मज़दूर मालिकों की मनमानी के विरुद्ध फिर आन्दोलन की राह पर

मोदी सरकार द्वारा चार लेबर कोड लाये जाने के बाद से देश भर में फ़ैक्टि्रयों-कारख़ानों के मालिकों के हौसले और बुलन्द हुए हैं। गोरखपुर के बरगदवाँ औद्योगिक क्षेत्र में स्थित वीएन डायर्स प्रोसेसर्स प्राइवेट लिमिटेड (कपड़ा मिल) में पिछले दिनों तीन मज़दूरों को ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से बाहर निकाल दिया गया। ये तीनों मज़दूर अरुण चौबे, संजय पाठक और आकाश चौबे पिछले लम्बे समय से इस कारख़ाने में काम कर रहे थे। इन मज़दूरों के निकाले जाने के बाद प्रबन्धन से कई बार बातचीत की गयी और उपश्रमायुक्त कार्यालय का भी मज़दूरों द्वारा दो बार घेराव किया जा चुका है, लेकिन प्रबन्धन अपनी मनमानी पर उतारू है।

वास्तव में कपड़ा मिल में हमेशा से श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाने का काम खुलकर होता रहा है। करीब 10 वर्ष पहले बिगुल मज़दूर दस्ता की अगुवाई में हुए आन्दोलनों के बाद कुछ श्रम क़ानून लागू होने शुरू हुए थे लेकिन बाद में आन्दोलन के बिखराव के साथ ही मालिकान की मनमानी बढ़ती गयी है। सात-आठ साल से भी ज़्यादा समय से काम करने वाले बहुत से मज़दूरों का ईपीएफ़-ईएसआई नहीं कटता। बहुत से मज़दूर कारख़ाने में कुशल मज़दूर की तरह काम कर रहे हैं, लेकिन उन्हें अभी भी अर्द्धकुशल मज़दूरों की श्रेणी में रखा गया है। कारख़ाने में लगभग 250 मज़दूर डेली वेज पर काम कर रहे हैं, जिन्हें ना तो कोई सुरक्षा के उपकरण मिलते हैं और न ही प्रशासन की उनके प्रति कोई जवाबदेही बनती है। पिछले दिनों इसी कारख़ाने में बॉयलर लीकेज की चपेट में आकर विकास पाण्डेय नाम का एक मज़दूर बुरी तरह घायल हो गया था। उस मामले में भी प्रबन्धन ने लापरवाही दिखायी और मज़दूरों का दबाव बनने के बाद, पूरा दिन बीत जाने पर ही हरकत में आया।

लॉकडाउन के दौरान जहाँ एक तरफ़ मज़दूरों की स्थिति पर घड़ियाली आँसू बहाते हुए फ़ासीवादी सरकार कारख़ाना मालिकों से मज़दूरों को पूरी मज़दूरी देने की 'अपील' कर रही थी, वहीं उसी सरकार की शह पर इन कारख़ाना मालिकों ने सभी मज़दूरों को सड़क पर लाकर छोड़ दिया था।

वास्तव में, गोरखपुर के बरगदवाँ और गीडा औद्योगिक इलाक़े के सभी कारख़ानों की कहानी लगभग यही है। कारख़ाने के मज़दूरों को डरा-धमकाकर ओवरटाइम करा लेना, कारख़ाने में बिजली-पानी की सप्लाई रोककर मज़दूरों को परेशान करना, काम के घण्टे बढ़ाना, समय पर वेतन न देने जैसी माँगों पर आये दिन संघर्ष होता रहता है। बिगुल मज़दूर दस्ता और टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन द्वारा निकाले गये तीनों मज़दूरों को वापस काम पर रखने समेत कई माँगों को लेकर आन्दोलन चलाया जा रहा है। जब तक प्रशासन इन तीनों मज़दूरों को काम पर रखने और सभी माँगों को मानने के लिए तैयार नहीं हो जाता, तब तक यह आन्दोलन जारी रहेगा। आन्दोलन की माँगें इस प्रकार हैं –

1. अरुण चौबे, संजय पाठक, आकाश चौबे को तत्काल वापस लिया जाये।
2. न्यूनतम मज़दूरी कम से कम 15000 रुपये की जाये।
3. कुशल मज़दूरों का काम कर रहे जिन मज़दूरों को अर्ध-कुशल की श्रेणी में रखा गया है, उनको कुशल की श्रेणी में रखा जाये।
4. कारख़ाने में दुर्घटनाएँ होती रहती हैं, मज़दूरों के लिए कारख़ाने के अन्दर डॉक्टरी उपचार की व्यवस्था की जाये।
5. कारख़ाने के अन्दर कार्यरत कैज़ुअल और ई.एस.आई.-ई.पी.एफ़. पाने वाले मज़दूरों, जिनकी संख्या लगभग 400 से 450 है, समेत सभी मज़दूरों को लॉकडाउन की बन्दी और सेनिटाइज़ेशन के कारण बन्दी को शामिल कर कम से कम 200 दिन के पी.एल. की राशि का भुगतान किया जाये।
6. जो मज़दूर कारख़ाने में सात-आठ साल या उससे ज़्यादा समय से काम कर रहे हैं उनका ई.एस.आई.-ई.पी.एफ़. कैम्प लगाकर बनाया जाये।

– बिगुल संवाददाता

ऑटोनियम इण्डिया के परमानेण्ट मज़दूरों का उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष

पहली मार्च को बहरोड़ औद्योगिक क्षेत्र (राजस्थान) की ऑटोनियम इण्डिया प्राईवेट लिमिटेड कम्पनी की परमानेण्ट मज़दूर यूनियन के उपाध्यक्ष योगेन्द्र यादव ने कम्पनी गेट पर अपने ऊपर पेट्रोल छिड़का और आत्महत्या करने की कोशिश की। बेहोश होने पर उन्हें आई.सी.यू. में भरती करवाया गया। वहीं दूसरी तरफ़ बाक़ी के 33 परमानेण्ट मज़दूर कम्पनी के अन्दर ही काम रोक कर बैठ गये हैं और माँग कर रहें हैं कि कम्पनी मज़दूरों को बदले की भावना से तंग-परेशान करना बन्द करे, ताकि कोई और मज़दूर कम्पनी प्रबन्धन से तंग आकर आत्महत्या के लिए मजबूर न हो।

इससे पहले योगेन्द्र यादव को मैनेजमेण्ट किसी न किसी बहाने परेशान करता रहा। कभी उन्हें टपूकड़ा प्लाण्ट में जाने को कहा जाता तो कभी लैब में भेज दिया जाता तो कभी गेट पर बैठाकर रखा जाता। मज़दूर कम्पनी प्रबन्धन से पहले से ही श्रम क़ानूनों व कम्पनी क़ानूनों (स्टैण्डिंग ऑर्डर के मुताबिक़) को लागू करने की माँग कर रहे हैं ताकि उन्हें बेवजह तंग-परेशान न किया जाये।

परमानेण्ट मज़दूर 2019 से ही कम्पनी में छँटनी, ज़बरन ट्रांसफ़र, झूठे मुक़दमों, धमकियों के ख़िलाफ़ संघर्ष कर रहे हैं। ऑटोनियम इण्डिया, बहरोड़ की यूनियन के अध्यक्ष जितेन्द्र यादव ने बताया कि कम्पनी में यूनियन के नेतृत्व व अन्य मज़दूरों को पिछले काफ़ी समय से नाजायज़ तरीक़े से परेशान किया जा रहा है। इसको लेकर डी.सी. ऑफ़िस को एक ज्ञापन भी सौंपा गया। 2014 से अभी तक कम्पनी ने किसी मज़दूर को बोनस नहीं दिया है, उल्टा बदले की भावना से कोरोना काल में यूनियन अध्यक्ष जितेन्द्र यादव के तबादले की घोषणा कर दी।

फ़िलहाल क़रीब 30 स्थायी मज़दूरों का गेट बन्द कर दिया गया है। महज़ 2-4 यूनियन के लोग ही अन्दर काम करने गये हैं। सीटू से सम्बद्ध इस यूनियन के 33 सदस्य हैं जिसने 2019 में कॉण्ट्रैक्ट के 33 अन्य मज़दूरों को सदस्यता दी थी, लेकिन कम्पनी ने सभी कॉण्ट्रैक्ट मज़दूरों को बाहर कर दिया था, जिसका अभी तक केस चल रहा है।

ऑटोनियम कम्पनी में दूसरी यूनियन भी है जो बीएमएस से सम्बद्ध है और उसके 22 सदस्य हैं। वे अभी भी कम्पनी में काम कर रहे हैं और उनके अलावा क़रीब 100 ठेका मज़दूर काम कर रहे हैं।

केहिन फ़ाई प्राइवेट लिमिटेड की स्त्री मज़दूरों का संघर्ष जारी

ऑटोमोबाइल सेक्टर की केहिन फ़ाई प्राईवेट लिमिटेड कम्पनी की महिलाएँ पिछले सेटलमेंट के तहत बढ़ी हुई सैलरी और एक साल से लम्बित नया सेटलमेंट करने की माँग करने पर कम्पनी मैनेजमेंट द्वारा किये गये अन्यायपूर्ण निलम्बन और महिलाओं के उत्पीड़न के ख़िलाफ़ पिछली 15 फ़रवरी से कम्पनी गेट पर धरने पर बैठी हैं। लगातार बाहर ठण्ड में सोने और दिन में गर्मी में बैठने से संघर्षरत मज़दूरों की सेहत पर बुरा असर पड़ रहा है। सड़क पर धूल-मिट्टी सेहत पर बुरा असर डाल रही है। जिसके चलते एक महिला मज़दूर की सेहत बिगड़ी और इलाज के लिए अस्पताल ले जाना पड़ा।

महिला मज़दूरों ने बताया कि वे पिछले पन्द्रह सालों से इस कम्पनी में काम कर रही है और उन्हें अपने साथ हो रहे अन्याय, शोषण और उत्पीड़न के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ बुलंद करने के लिए आज मज़बूर होना पड़ा है। उन्होंने साफ़ कहा कि कम्पनी मैनेजमेंट के कई लोग उन्हें कम्पनी विज़िटर के साथ अनैतिक सम्बन्ध बनाने का दबाव तक बनाते हैं।

केहिन फ़ाई प्राइवेट लिमिटेड एक वेण्डर कम्पनी है, जो हरियाणा के रेवाड़ी ज़िले के बावल में स्थित है और होण्डा टू व्हीलर के लिए कार्बोरेटर, ट्रोटल बॉडी व फ़्यूल इंजन बनाती है। बावल के अलावा इसका पुणे (महाराष्ट्र) में भी प्लांट हैं।

कम्पनी प्रबन्धन और नेतृत्व के साथियों के बीच श्रम विभाग की मौजूदगी में समझौता वार्ता जारी है लेकिन अभी तक दोनों पक्षों के बीच समझौता नहीं हो पाया है। उल्टा कम्पनी बदले की भावना से 10 महिला मज़दूरों को, जिसमें 8 नेतृत्वकारी महिला मज़दूर शामिल हैं, सस्पेण्ड कर चुकी है।

मज़दूरों में एकजुटता की कमी का मैनेजमेंट फ़ायदा उठा रहा है। 50 से अधिक महिला मज़दूर काम करने के लिए अन्दर चली गयी हैं और क़रीब इतनी ही मज़दूर धरने पर नहीं आ रही हैं। इसके अलावा क़रीब 900 ठेका, डिप्लोमा, आईटीआई श्रेणी की मज़दूरों के साथ भी संघर्षरत मज़दूरों की एकता नहीं बन पायी है। ऐसे में प्रबन्धन विभिन्न तरीक़ों से मामले को लम्बा खींचकर मज़दूरों को थकाने-भटकाने की कोशिश में कामयाब रहा है।

परमानेण्ट मज़दूरों के हर तीन साल में होने वाले माँगपत्रक को लेकर सेटलमेण्ट करने में कम्पनी प्रबन्धन काफ़ी जोड़-तोड़ करता है, ताकि किसी तरीक़े से मज़दूरों की वेतन वृद्धि को कम से कम किया जाये। इस बार कम्पनी प्रबन्धन ने मज़दूरों की सापेक्षिक रूप से तनख़्वाह बहुत कम बढ़ाई है, और प्रोडक्शन टारगेट को भी बढ़ा दिया है।

कम्पनी के परमानेण्ट मज़दूरों का सेटेलमेण्ट वर्ष 2020 में होना था। लेकिन कोरोना की वजह से यह टलता गया। लॉकडाउन खुलने के बाद जब महिलाओं ने कम्पनी से नये माँगपत्रक के अनुरूप सेटेलमेण्ट की माँग की तो उल्टे कम्पनी प्रबन्धन ने मज़दूरों से अण्डरटेकिंग (सादे काग़ज़ पर हस्ताक्षर) भरने को कहा। मज़दूरों द्वारा मना करने के बाद कम्पनी प्रबन्धन ने सभी स्थायी महिला मज़दूरों के लिए गेट बन्द कर दिया और कम्पनी गेट के आस-पास कंटीले तार लगा दिये व बैरिकेडिंग कर दी। बाद में मीडिया में मामला उछलने पर कंटीली तारें हटायीं।

ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन के साथी लगातार संघर्ष स्थल पर मौजूद रहे हैं। लेकिन नेतृत्व न तो अपनी यूनियन की सभी महिला साथियों से और न ही अन्य यूनियनों के नेतृत्व व सहयोगी व्यक्तियों से तालमेल बैठा पा रहा है। अगर नेतृत्व ही संकीर्ण सोच वाला और नौसिखिया व्यवहार करेगा तो संघर्ष में दिक़्क़त आयेगी। दूसरे, महज़ स्थायी मज़दूर अपनी माँगों के लिए संघर्ष कर रही हैं, जबकि बाक़ी 900 मज़दूरों का माँगपत्र में ज़िक्र तक नहीं है। इसलिए वे संघर्ष में साथ भी नहीं हैं।

सत्यम ऑटो कम्पोनेण्ट के 1000 से अधिक मज़दूर भूख हड़ताल पर!

हरियाणा के मानेसर औद्योगिक क्षेत्र की सत्यम ऑटो कम्पोनेण्ट कम्पनी में पिछली 1 मार्च से एक हज़ार से अधिक स्थायी और कैज़ुअल दोनों मज़दूर पूरी तरह काम बन्द करके कम्पनी के भीतर ही अपने बुनियादी श्रमिक अधिकारों, ओवर टाइम, वेतन बढ़ोत्तरी, बोनस आदि माँगों को लेकर हड़ताल पर बैठने को मजबूर हुए हैं। मज़दूर अपनी माँगों को लेकर एक सप्ताह तक दोपहर के भोजन का बहिष्कार कर चुके हैं, लेकिन प्रबन्धन द्वारा उनकी माँगों की तरफ़ कोई ध्यान न दिये जाने के कारण वे उत्पादन पूरी तरह से ठप्प करने को मजबूर हुए हैं।

सत्यम कम्पनी में क़रीब 1400-1500 कैज़ुअल और करीब 426 परमानेण्ट मज़दूर काम करते हैं। ये मज़दूर मुख्यतः कोरोना की आड़ में कम्पनी प्रबन्धन द्वारा उनसे उनके मौलिक अधिकार छीने जाने और वेतन अदायगी न किये जाने, बोनस-भत्ते में कटौती, वेतन बढ़ोत्तरी की माँगों को लेकर विरोध प्रदर्शन कर रहें हैं और दो साल से लम्बित अपनी वेतन समझौते की माँगों तथा कम्पनी प्रबन्धन द्वारा किये गये वायदों को लागू करवाने के लिए संघर्ष को तेज़ करने के लिए मजबूर हुए हैं।

ज्ञात रहे कि मानेसर के सेण्टर 3 (प्लॉट नम्बर 26 सी) स्थित इस प्लाण्ट में हीरो, होण्डा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के वाहनों के कलपुर्जे बनते हैं। भारत में सत्यम कम्पनी के कुल छह प्लाण्ट हैं, जो हरियाणा में मानेसर के अलावा धारूहेड़ा (ज़िला रेवाड़ी), लुधियाना (पंजाब), होली (गुजरात), चेन्नई (तमिलनाडु), हरिद्वार (उत्तराखण्ड) में स्थित हैं।

लॉकडाउन के बाद 5 मई से मज़दूर काम पर लौटे, लेकिन कैज़ुअल मज़दूरों को लॉकडाउन का पैसा नहीं दिया गया, उल्टा प्रबन्धन मज़दूरों से ज़बरन 12-12 घण्टे की शिफ़्ट करवायी जा रही है और भुगतान भी डबल रेट से नहीं किया जा रहा है। कम्पनी छुट्टियों में कटौती कर रही है। बोनस व अटेण्डेन्स अवार्ड में कटौती कर रही है। टायलेट जाने पर भी रोकटोक कर रही है और थोड़ा भी बोलने पर बाहर का रास्ता दिखा रही है।

कम्पनी स्थायी मज़दूरों के साथ 2019 से लम्बित त्रि-वर्षीय वेतन समझौता (वेज सेटलमेण्ट) नहीं कर रही है। कम्पनी प्रबन्धन मज़दूरों के साथ सौहार्दपूर्ण माहौल में बात करने की बजाय मज़दूरों पर आरोपपत्र जारी कर रहा है, श्रम विभाग के समक्ष बात करने की बजाय चण्डीगढ़ में शिकायत दर्ज करवा रहा है। आवाज़ उठाने वाले मज़दूरों को आरोप पत्र भेजा जा रहा है। कम्पनी से निकालने की धमकी दी जा रही है। लाइनों पर परेशान किया जा रहा है।

मज़दूरों द्वारा सभी यूनियनों व इन्साफ़पसन्द नागरिकों से मदद की अपील की जा रही है। श्रम विभाग व प्रशासन से न्याय की गुहार लगायी जा रही है।

फ़ासीवादी सरकार द्वारा प्रायोजित दिल्ली दंगों का एक साल

आज़ादी के बाद के सबसे व्यापक जनान्दोलन को समाप्त करने के लिए रची गयी थी दंगों की साज़िश

पिछले साल देश की राजधानी दिल्ली के उत्तर-पूर्वी दिल्ली क्षेत्र में 23 फ़रवरी से 25 फ़रवरी को जो हिंसा हुई, उसे मीडिया द्वारा 'दिल्ली दंगा-2020' का नाम दिया गया। इस हिंसा में तक़रीबन 55 लोगों की मौत हुई, 200 से अधिक लोग घायल हुए और अरबों की सम्पत्ति का नुक़सान हुआ। **जिन दिल्ली दंगों को गोदी मीडिया द्वारा हिन्दू और मुस्लिम समुदाय के बीच हुई हिंसा व दंगा कहा जा रहा है, वे असल में दिल्ली में राज्य की शह पर संघ-भाजपा द्वारा प्रायोजित साम्प्रदायिक हिंसा थी।** दिल्ली दंगों के बाद भाजपा की फ़ासीवादी सरकार के इशारे पर दिल्ली पुलिस द्वारा अब तक 4,000 लोगों को गिरफ़्तार व हिरासत में लिया जा चुका है, जिनमें छात्र-युवा कार्यकर्ता, जन संगठनों के कार्यकर्ता व जनपक्ष बुद्धिजीवी भी शामिल हैं। दिल्ली पुलिस ने कई फ़र्ज़ी केस दर्ज कर आज भी हज़ारों बेगुनाह लोगों को जेल में बन्द कर रखा है। जबकि दिल्ली दंगों से पहले भड़काऊ भाषण देने वाले दंगों के असली दोषियों, कपिल मिश्रा, प्रवेश वर्मा, अनुराग ठाकुर और रागिनी तिवारी पर अब तक कोई भी कार्रवाई नहीं की गयी।

दिल्ली दंगे – एक साज़िश! पर किसके द्वारा!!

दिल्ली पुलिस द्वारा दिल्ली दंगों की जांच करते हुए जो चार्जशीट (झूठ का पुलिन्दा) अब तक कोर्ट में जमा की गयी है, उसके मुताबिक़ दिल्ली में दंगे एक साज़िश के तहत हुए और इन दंगों की साज़िश नागरिकता संशोधन क़ानून (सीएए) व राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी) का विरोध कर रहे प्रदर्शनकारियों ने रची, यही बात संसद में तड़ीपार अमित शाह (ग्रह मंत्री) ने भी कही थी, 'यानी उल्टा चोर कोतवाल को डांटे'। दिल्ली दंगा प्रदर्शनकारियों ने नहीं बल्कि प्रदर्शन से डरे संघी-भाजपा गिरोह का कारनामा था। **सीएए-एनआरसी जैसे काले क़ानूनों के ख़िलाफ़ दिल्ली के शाहीन बाग़ में शुरू हुआ विरोध प्रदर्शन देशभर में फैल चुका था और आज़ादी के बाद का सबसे बड़ा जनउभार था। यह आन्दोलन मोदी-शाह-संघ की पिछले 6 साल की कारगुज़ारियों से उपजे गहरे असन्तोष और जनाक्रोश की भी अभिव्यक्ति था। शाहीन बाग़ और दिल्ली के कई इलाक़ों सहित देशभर में हो रहे इन विरोध प्रदर्शनों से केन्द्र में सत्तासीन मोदी सरकार बौखला गयी थी।** दिल्ली पुलिस का यह कहना तो सही है कि दिल्ली दंगा एक साज़िश था, सुनियोजित था, पर यह छुपाया जा रहा है कि यह दंगा जनान्दोलन से डरे हुए फ़ासीवादी सत्ताधारियों की ही साज़िश थी। **यह दंगा असल में राज्य प्रायोजित हिंसा थी, जिसमें पुलिस की सक्रिय भागीदारी के साथ हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्ट गिरोहों ने मुस्लिम कॉलोनियों पर हमले किये थे।**

दिल्ली पुलिस की बेसिर-पैर की जाँच के मुताबिक़ सीएए-एनआरसी का विरोध कर रहे प्रदर्शनकारियों द्वारा दंगों की साज़िश कई महीने पहले रची गयी थी। पुलिस के मुताबिक़ दिल्ली दंगों की जाँच व गिरफ़्तारियाँ जायज़ हैं, कि उसकी कार्रवाई गवाहों और फॉरेन्सिक जाँच के बाद मिले प्रमाणों के आधार पर हो रही है। यदि ऐसा था तो दिल्ली पुलिस को ऐसे सबूत प्रेस, मीडिया व ज़िम्मेदार नागरिकों के सामने भी रखने चाहिए थे, पर पुलिस ने ऐसा नहीं किया। **पुलिस के अनुसार सड़क जाम करना दंगे की साज़िश का हिस्सा था और यहीं से दंगे भड़के। लेकिन सड़क जाम करना अपने आप दंगे का कारण कैसे हो सकता है? सड़क जाम की स्थिति में भी पुलिस सकारात्मक कार्रवाई करके लोगों को वापस धरना स्थलों पर भेज सकती थी। शाहीन बाग़ सहित दिल्ली की 14 जगहों पर डेढ़-दो महीने से शान्तिपूर्वक विरोध प्रदर्शन जारी थे। फिर 23 फ़रवरी 2020 को अचानक ऐसा क्या हो गया था? सच्चाई यही है कि 23 फ़रवरी को पुलिस की मौजूदगी में कपिल मिश्रा के भड़काऊ भाषण देने के बाद ही हिंसक घटनाओं की शुरुआत हुई थी।** वैसे लोगों को उकसाने और दंगे भड़काने के प्रयास लम्बे समय से हो रहे थे। **पुलिस के द्वारा अब तक क़रीब 4000 लोगों को गिरफ़्तार/डिटेन किया जा चुका है जिनमें से कुछ को विभिन्न धाराएँ लगाकर न्यायिक हिरासत में भी भेज दिया गया है। पर यह ताज्जुब की बात है कि इन 4000 लोगों में दंगों व हिंसा के प्रत्यक्ष ज़िम्मेदारों का पूरा-पूरा अभाव है तथा दंगों की आग में अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने वाले लोगों में से एक भी शामिल नहीं है। अधिकतर अल्पसंख्यक युवाओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं को सरकार जनविरोधी नीतियों का विरोध करने की वजह से सज़ा दे रही है।**

हालाँकि भाजपा के नेताओं द्वारा लोगों को भड़काने के ही तमाम सबूतों के चलते हाईकोर्ट के जज एस. मुरलीधर ने कई भाजपा नेताओं पर एफ़आईआर तक दर्ज करने के दिल्ली पुलिस को आदेश दिये थे। यह अलग बात है कि एफ़आईआर दर्ज करना तो दूर उन जज महोदय का तुरन्त तबादला हो गया! **दंगे के असल दोषियों पर कोई ठोस कार्रवाई न करने के चलते दिल्ली पुलिस की भूमिका पर सवाल उठ रहे हैं। यदि असल दोषी और भड़काऊ नेता ऐसे ही सरेआम मौज उड़ाते घूमते रहेंगे तो भला कौन नहीं पुलिस की निष्पक्षता पर सवाल**

(पेज 12 पर जारी)

प्रवासी मज़दूरों के ख़ून से रंगा है क़तर में होने वाला अगला फ़ुटबॉल वर्ल्ड कप

– लालचन्द्र

एक साल बाद दुनिया का सबसे बड़ा फ़ुटबॉल टूर्नामेंट क़तर में होने वाला है। लम्बे समय बाद यह टूर्नामेंट एशिया के किसी देश में हो रहा है। लगभग महीने भर चलने वाले इस टूर्नामेंट के लिए लोगों में पागलों जैसी दीवानगी होती है। सारी दुनिया से पैसे वाले लोग मैच देखने के लिए क़तर पहुँचेंगे। उनके लिए आलीशान स्टेडियम, होटल, चमचमाती सड़कें आदि बनाने में एशिया के अनेक ग़रीब देशों के लाखों मज़दूर पिछले कई सालों से जुटे हुए हैं। ये मज़दूर बेहद ख़राब हालात में रहते और काम करते हैं। आये दिन होने वाली दुर्घटनाओं में वे अपनी जान भी गँवाते रहते हैं।

अपने देशों में रोज़ी-रोटी के बेहतर मौक़े न मिलने पर ये कामगार क़तर, सफ़दी, अमीरात जैसे देशों में जाते हैं, जहाँ उन्हें पैसे तो कुछ बेहतर मिल जाते हैं, पर जान हथेली पर लेकर और सम्मान को भूलकर काम करना पड़ता है।

भारत, नेपाल व बांग्लादेश के प्रवासी मज़दूरों के शोषण से क़तर के ख़लीफ़ा स्टेडियम का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। आस-पास के बग़ीचों व खेल सुविधाओं को, जिसे "एस्पायर ज़ोन" कहा जाता है, विकसित किया जा रहा है। दुनिया के प्रमुख फ़ुटबाल टूर्नामेण्ट की मेज़बानी के लिए क़तर ने सात स्टेडियमों, एक हवाई अड्डे और सार्वजनिक परिवहन के लिए परिवर्धित व्यवस्था सहित प्रमुख निर्माण परियोजनाएँ शुरू की हैं। मगर इस मेज़बानी की क़ीमत प्रवासी मज़दूर अपनी जान देकर अदा कर रहे हैं।

क़तर में 2017 में दो लाख तीस हज़ार प्रवासी श्रमिक थे। सरकारी सूत्रों के मुताबिक़ 10 सालों में 6,500 प्रवासी मज़दूरों की मौतें हो चुकी हैं। जिसमें सबसे ज़्यादा मौतें भारत के मज़दूरों की हुई हैं। इनकी संख्या 2,711 है। नेपाल के 1,641, बांग्लादेश के 1,018 व पाकिस्तान के 824 प्रवासी मज़दूरों की जानें गयीं। गार्जियन के मुताबिक़, 2010 के बाद हर दिन औसत बारह प्रवासी मज़दूरों की मौतें हुई हैं। लन्दन से प्रकाशित अख़बार 'द गार्डियन' के मुताबिक़, 37 मौतें केवल स्टेडियमों पर काम के दौरान हुई थीं।

जो मज़दूर अभी काम पर लगे हैं, वे भयंकर शोषण और उत्पीड़न के शिकार हैं। कुछ से ज़बरन काम कराया जा रहा है, वे नौकरी नहीं बदल सकते। वे देश नहीं छोड़ सकते और तनख़्वाहों के लिए अक्सर महीनों इन्तज़ार करते हैं, जबकि फ़ीफ़ा (फ़ुटबाल का वैश्विक शासी निकाय), इसके प्रायोजक और इसमें शामिल निर्माण कम्पनियाँ अकूत दौलत कूटने के लिए तैयार बैठी हैं।

यह बात सौ फ़ीसदी सच है कि सम्पत्ति का हर साम्राज्य अपराध की बुनियाद पर खड़ा होता है। और सबसे बड़ा अपराध मेहनतकशों की श्रमशक्ति के शोषण का है। दक्षिण एशियाई देशों, जैसे भारत, नेपाल, श्रीलंका, पाकिस्तान व बांग्लादेश के लाखों श्रमिक अच्छे रोज़गार की तलाश में खाड़ी देशों की तलाश में जाते हैं। संयुक्त अरब अमीरात और सऊदी अरब जैसे देशों की तरह क़तर भी प्रवासी मज़दूरों पर अत्यधिक निर्भर है।

लेकिन मरने वाले मज़दूरों की कुल संख्या इससे कहीं अधिक है। क्योंकि रिसर्च में केन्या व फ़िलीपीन्स के मज़दूरों को शामिल नहीं किया गया है। जबकि यहाँ से अच्छी ख़ासी संख्या में मज़दूर क़तर में काम पर आते हैं। रिपोर्ट बताती है कि क़तर प्रवासी मज़दूरों की सुरक्षा के लिए कुछ ख़ास नहीं कर रहा है। इस त्रासदी को झेल रहे परिवारों को मुआवज़ा तक नहीं दिया गया।

एमनेस्टी इण्टरनेशनल की रिपोर्ट के मुताबिक़, ख़लीफ़ा स्टेडियम व एस्पायर ज़ोन के निर्माण में लगे प्रवासी मज़दूरों के मानवाधिकारों का गम्भीर उल्लंघन हो रहा है। ग़रीबी व बेरोज़गारी से बचने के लिए प्रवासी मज़दूर क़तर में काम करने आते हैं लेकिन उन्हें इसकी भारी क़ीमत चुकानी पड़ती है। श्रमिकों के अनुसार भर्ती एजेण्ट उन्हें काम के प्रकार व सैलरी प्राप्त करने के बारे में झूठे वायदे करते हैं। इसके बदले में भर्ती एजेण्ट श्रमिकों से भारी वसूली करते हैं जो कि 500 अमेरिकन डॉलर से 4,300 अमेरिकी डॉलर तक हो सकती है। कई श्रमिक क़र्ज़ में डूबे हुए हैं। उन्हें क़तर में अपनी नौकरी छूटने का डर लगा रहता है।

श्रमिक अक्सर तंग, गन्दे व असुरक्षित आवासों में रहते हैं। एक ही कमरे में आठ से अधिक लोग चारपाइयों पर सोने के लिए विवश हैं। जबकि क़तर का क़ानून व वर्कर्स वेलफ़ेयर स्टैण्डर्ड अधिकतम चार बेड प्रति कमरा और बेड शेयरिंग के उपभोग की अनुमति देता है।

नेपाल के एक श्रमिक से क़तर में हर महीने 300 अमेरिकी डॉलर मिलने का वायदा किया गया था। लेकिन क़तर में काम करने के बाद यह 190 डॉलर हो गया। जब श्रमिक कम्पनियों को बताते हैं कि उन्हें उच्च वेतन देने का वायदा किया गया था तो उन्हें अनदेखा कर दिया जाता है। मैनेजर कहता है कि मुझे इसकी परवाह नहीं कि आपके देश में आपसे क्या कहा गया था। हम आपको जो दे रहे हैं, उससे ज़्यादा आपको कुछ नहीं मिलेगा। और अगर आप इसी तरह बोलते रहे, तो एजेन्सी को वीज़ा रद्द करने और देश में वापस भेजने के लिए कहूँगा।

श्रमिकों को कई महीने तक वेतन नहीं दिया जाता है। जिससे वे भोजन ख़रीदने, अपने घर पैसे भेजने व भर्ती से सम्बन्धित क़र्ज़ के भुगतान में असमर्थ होते हैं और कई लोग हताशा के कगार पर धकेल दिये जाते हैं।

कुछ नियोक्ता क़तरी क़ानून द्वारा आवश्यक होने के बावजूद श्रमिकों को आवास परमिट नहीं देते। या उसका नवीनीकरण नहीं करते। ये आई.डी. कार्ड तय करते हैं कि श्रमिकों को क़तर में रहने और काम करने की अनुमति है। इसके बिना श्रमिकों को क़ैद या जुर्माना हो सकता है। इसी वजह से ख़लीफ़ा स्टेडियम में काम करने वाले कुछ मज़दूर, कार्यस्थल से निकलने से डरते हैं। आमतौर पर सभी मज़दूरों के पासपोर्ट नियोक्ताओं द्वारा जमा करा लिये जाते हैं। यदि मज़दूर क़तर छोड़कर जाना चाहे तो उसे कम्पनी द्वारा एक्ज़िट परमिट लेना होता है लेकिन नियोक्ता इन अनुरोधों को अनदेखा कर देते हैं। श्रमिकों को धमकी दी जाती है कि जब तक कि उनका कहीं और अनुबन्ध नहीं हो जाता, वे नहीं जा सकते और नये अनुबन्ध की अवधि दो साल तक हो सकती है। ख़लीफ़ा स्टेडियम में मज़दूरों की आपूर्ति करने वाली कम्पनियाँ अपने कर्मचारियों को ज़बरिया श्रम के अधीन रखती हैं। और जो मज़दूर अपनी शर्तों के कारण काम करने से इन्कार करते हैं, उनके वेतन में कटौती की धमकी दी जाती है या उन्हें बकाया वेतन दिये बिना निर्वासन के लिए पुलिस को सौंप दिया जाता है।

पिछले साल क़तर की हुकूमत ने मज़दूरों के अधिकारों और सेवा शर्तों में सुधार के नाम पर क़वायद शुरू की थी। मसलन कफ़ाला प्रणाली यानी वीज़ा सिस्टम में मज़दूर और नियोक्ता के बीच व्यवस्थित क़ायदे तय करना। इसमें नियोक्ता की पकड़ काग़ज़ी तौर पर कुछ ढीली की गयी हालाँकि अमल में ऐसा नहीं दिखायी दिया।

भारत हो या खाड़ी देश, सारे श्रम व सेवा शर्तों में सुधार मेहनतकशों को और अधिक निचोड़कर थैलीशाहों की तिज़ोरियाँ भरने के लिए हो रहे हैं। ऐसे में मज़दूरों को सोचना-समझना होगा कि इससे पार पाने का सही रास्ता क्या हो।

ओखला औद्योगिक क्षेत्र : मज़दूरों के काम और जीवन पर एक आरम्भिक रिपोर्ट

– लता, सार्थक, अमन

चौड़ी-चौड़ी सड़कों के दोनों तरफ़ मकानों की तरह बने कारख़ाने एक बार को देख कर लगता है कि कहीं यह औद्योगिक क्षेत्र की जगह रिहायशी क्षेत्र तो नहीं। कई कारख़ाने तो हरे-हरे फूलदार गमलों से सज़े इतने ख़ूबसूरत मकान से दिखते हैं कि वहम होता है शायद यह किसी का घर तो नहीं। लेकिन नहीं ओखला फेज़ 1 और ओखला फेज़ 2 के मकान जैसे दिखने वाले कारख़ाने और कारख़ानों जैसे दिखने वाले कारख़ाने, सभी एक समान मज़दूरों का ख़ून निचोड़ते हैं, उन्हें मनमर्ज़ी काम पर रखते हैं और मनमर्ज़ी काम से निकाल देते हैं, दस से बारह घण्टे काम करना आम बात है, लेकिन जिन महीनों व्यवसाय अपने चरम पर होता है काम के घण्टे 24 तक हो जाते हैं। मालिक की बढ़ी ज़रूरतों को चौबीस-चौबीस घण्टे बिना रुके काम कर पूरा करने के बाद भी मज़दूरों को हाथ लगती है छँटनी और मज़दूरी में धाँधली। फ़ैक्टरी-कारख़ानों के भीतर सुरक्षा इन्तज़ाम उतने ही दुरुस्त हैं जितने आज के दौर में पक्की नौकरी और बेहतर पगार। दुर्घटनाग्रस्त होने पर कोई मुआवज़ा मिले यह तो दूर की बात है, उस समय चिकित्सा मदद दी जाये यह भी कठिन हो जाता है और फिर नौकरी तो जाती ही है। काम की परिस्थितियाँ तो दुरूह हैं ही, जीवन की परिस्थितियाँ भी बद से बदतर हैं। कोई भी इन्सान अपना ख़ून-पसीना मात्र दो जून की रोटी पाने के लिए नहीं बहाता है। वह समाज के लिए मेहनत कर रहा होता है इसलिए बदले में उसे बेहतर जीवन, स्वास्थ्य सुविधा, स्कूल और हवादार आवास मुहैया कराना व्यवस्था की न्यूनतम ज़िम्मेदारी होती है। लेकिन यह व्यवस्था मज़दूरों को चाहे काम की जगह हो या आवास की, एक समान नारकीय स्थिति में रखती है।

क्षेत्रफल, आबादी और उद्योगों के प्रकार

1952 में लघु उद्योगों के लिए ओखला औद्योगिक क्षेत्र के निर्माण का काम शुरू हुआ जो 1958 में पूरा हुआ। दक्षिण दिल्ली में बसा ओखला औद्योगिक क्षेत्र 7.33 वर्ग किलोमिटर में फैला हुआ है जिसकी आबादी लगभग दो लाख है। यहाँ मुख्य तौर पर कपड़ा और चमड़ा पोशाकों के निर्यात आधारित उद्योग (गार्मेण्ट एक्सपोर्ट इण्डस्ट्री और लेदर गार्मेण्ट इण्डस्ट्री) हैं, साथ में फार्मास्युटिकल उद्योग, प्लास्टिक और पैकेजिंग उद्योग, मशीन मैन्युफ़ैक्चरिंग तथा प्रिण्टिंग प्रेस हैं। इसके अलावा कॉरपोरेट कार्यालय भी हैं। सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग (MSME) मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 2018-19 के अनुसार नई दिल्ली में 9,36,000 पंजीकृत कम्पनियाँ हैं जिसमें 23 लाख के लगभग कुशल और अर्द्ध-कुशल मज़दूर काम करते हैं, ओखला भी इसी मंत्रालय के मातहत है। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है इस औद्योगिक क्षेत्र में मुख्य तौर पर गार्मेण्ट एक्सपोर्ट के कारख़ाने हैं। इन कारख़ानों में काम करने वाले अधिकतर मज़दूर उत्तर प्रदेश और बिहार के हैं। इन कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूरों की औसत उम्र 35 साल होती है। मशीन पर झुक कर सिलाई करने से आँखों और पीठ पर बेहद ज़ोर पड़ता है। क्षेत्र में कई भण्डार घर हैं जिसमें मज़दूर माल ढोने का काम करते हैं। माल ढुलाई बेहद कठिन काम होता है जिसकी तुलना में दिहाड़ी बेहद कम मिलती है। किंगफ़िशर के गोदाम में काम करने वाले तौहीद के अनुसार एक पेटी बियर चढ़ाने के 65 पैसे मिलते हैं। पेटी चढ़ाने और उसे शहर के अलग-अलग हिस्सों में पहुँचाने में दिन का 500 बनता है। लेकिन जो मज़दूर शराब की भट्टी से आयी बियर की पेटियों को गोदाम में उतारते-चढ़ाते हैं उनकी और बुरी हालत होती है क्योंकि उन्हें टेम्पों में लाने-ले-जाने का पैसा नहीं मिलता। उनकी 65 पैसे पेटी के हिसाब से पूरे दिन की दिहाड़ी बेहद कम बनती है।

मज़दूरों की एक आबादी भागती-दौड़ती सुबह चार बजे से काम की तलाश में लेबर चौक पहुँचती है। लॉकडाउन के बाद इनकी काम की असुरक्षा पहले से कई गुणा अधिक बढ़ गयी है।

सुबह-सुबह अपने कामों पर भागते-दौड़ते मज़दूरों में एक आबादी बेहद अलग सी दिखती है वह है कॉरपरेट दफ़्तरों में काम करने वाले स्त्री-पुरुषों की। यह आबादी चेहरे के रंगरोगन, कपड़ों और बोल-चाल से मज़दूर आबादी से एकदम अलग-थलग दिखती है और देखकर ऐसा ही महसूस होता है कि इस आबादी के लिए मज़दूर वर्ग अदृश्य है। अपने फ़ोन में मशग़ूल या अपने जैसे ही कॉरपोरेट के दूसरे कर्मचारियों के साथ हँसी-मज़ाक़ करते या चायख़ानों और ठेलों पर बातचीत करते ये अपने समानान्तर चल रही दुनिया से बिल्कुल अपरिचित लगते हैं।

काम की परिस्थितियाँ और मज़दूरी

मज़दूरों के लिए काम करने की परिस्थितियाँ बेहतर और सुरक्षित रही हों ऐसा तो कभी नहीं था, लेकिन लॉकडाउन के पहले की तुलना में इस दौरान हालात बहुत तेज़ी से बदतर हुए हैं। लॉकडाउन के दौरान 12 करोड़ लोगों ने अपनी नौकरियाँ गवायीं, जिसका असर ओखला औद्योगिक क्षेत्र में भी साफ़ देखने को मिलता है। जिन सड़कों पर मज़दूरों की रेलमपेल लगी रहती थी वहाँ बहुत कम मज़दूर नज़र आते हैं। चाय-ठेले, रेहड़ी-खोमचे, रुमाल-इयरफ़ोन-मोबाइल के कवर बेचने वाले किसी से भी बात करो, सभी का एक ही कहना होता है, "पहले देखना था यहाँ सुबह-शाम पाँव रखने की जगह नहीं होती थी।" हरकेश नगर मेट्रो स्टेशन के सामने की सड़क पर खड़े होने वाला बारहवीं कक्षा में पढ़ने वाला विशाल, जो इयरफ़ोन और चार्जर बेचता है उसने भी हमें यही बताया। ऐसा ही ओखला फेज़ 1 में चाय की दुकान वाले का कहना था कि अब तो यहाँ लोग ही नहीं दिखते, वहीं पहले यहाँ सुबह आठ बजे किसी मेले जैसी भीड़-भाड़ हुआ करती थी। वह स्वयं भी गार्मेण्ट एक्सपोर्ट में काम करते थे, लॉकडाउन के समय नौकरी चली गयी और वह भी नौकरी की तलाश कर रहे हैं। उनसे गार्मेण्ट फ़ैक्टरी में काम की परिस्थितियों की महत्वपूर्ण जानकारी मिली। उनके अनुसार सितम्बर से मार्च तक एक्सपोर्ट गार्मेण्ट में तेज़ी का दौर रहता है। उस दौरान मज़दूर बिना रुके लगातार खड़े या बैठे चौबीस-चौबीस घण्टे काम करते हैं। कारख़ानों में ही कुछ घण्टों के लिए सो जाते हैं और फिर उठकर काम में लग जाते हैं। मज़दूर महीनों-महीनों कारख़ाने में बन्द हो काम करते हैं। मज़दूर अपने बच्चों का मुँह कुछ पल के लिए कारख़ाना गेट पर देख लिया करते हैं। इन कुछ पलों में वे कारख़ाना गेट पर परिवार के साथ होते और फिर दुबारा से काम पर वापस लौट जाते। इस तरह महीनों-महीनों मज़दूरों का ख़ून चूसकर मालिक लाखों-करोड़ों का मुनाफ़ा कमाते हैं और इन्हें काम में मन्दी आने पर भूखों मरने के लिए सड़कों पर छोड़ देते हैं। फेज़ 1 में सड़क की सफ़ाई करने वाले प्रेम का कहना है कि यहाँ तो अब नौकरियाँ रह ही नहीं गयी हैं। लोग बस्तियों में भूखों मर रहे हैं। इण्टरनेट पर कितना भी खोजो कोई ठोस आँकड़ा नहीं मिलता। यह पता लगाना बेहद कठिन हो गया है कि किसी ख़ास औद्योगिक क्षेत्र में कितने लोगों की नौकरियाँ गयीं या औसत दिहाड़ी क्या है, कुछ पता नहीं चलता। यह सरकार बेहद शातिराना तरीक़े से सारे आँकड़ों और जानकारियों को छुपा रही है। आख़िरी आँकड़े 2016-17 तक के मिलते हैं और उसके बाद के नहीं।

ख़ैर, हर क्षेत्र के मज़दूर अपने आस-पास और अपनी ज़िन्दगी को देखकर भली-भाँति समझ रहे हैं कि रोज़गार मिलना कितना कठिन और मज़दूरी कितनी कम है। संजय कॉलोनी के नागेन्द्र, जो लॉकडाउन के पहले गार्मेण्ट एक्सपोर्ट हाउस में मास्टर टेलर का काम करते थे, लॉकडाउन के समय से बेरोज़गार हैं। पत्नी अपोलो में मरीज़ों की अटेण्डेण्ट का काम करती हैं। पूरे कोरोना काल में वह काम करती रहीं, लेकिन जैसा पीएफ़ की धाँधली का ठेका कम्पनियों में चलन है वह किसी को भी पूरे साल के लिए काम पर नहीं रखतीं और इसलिए उन्हें भी घर बिठा दिया। यह है फ्रण्ट लाइन वारियर पर फूल बरसाने के बाद उनके साथ किया गया सलूक़। पत्नी को काम मिल गया है लेकिन कोरोना काल में ही अटेण्डेण्ट का काम करने वाली पत्नी की बहन अभी दो महीनों से घर बैठी है। नागेन्द्र ने बताया कि आज कई फ़ैक्टरियों में तनख़्वाह पहले जितनी ही देते हैं लेकिन नौकरी पर रखने से पहले यह लिखवा लेते हैं कि तनख़्वाह का चार हज़ार वापस कम्पनी के खाते में भेजना होगा। जो ऐसा न करे वह नौकरी से बाहर। प्रिण्टिंग प्रेस में काम कर चुके एक बुज़ुर्ग मज़दूर ने बताया कि प्रिण्टिंग में भी काम की परिस्थितियाँ वैसी ही बुरी हैं। काम के दौरान उनका हाथ कट गया था। कटने के बाद दाहिने हाथ की उंगलियाँ विकृत हो गयी हैं। इस दुर्घटना का कम्पनी ने कोई मुआवज़ा नहीं दिया। मायंत्रा में काम कर चुके रवि ने बताया कि किस प्रकार दिवाली की सेल के दौरान उसने ओवरटाइम किया, लेकिन ओवरटाइम का पैसा देने की जगह उसे और उसके तीन दोस्तों को काम से निकाल दिया गया। ये तीनों पैकेजिंग और डिस्पैच में एक्सपर्ट थे लेकिन किसी भी ग़लत बात का विरोध पुरज़ोर तरीक़े से करते थे। इन तीनों ने लेबर कोर्ट में केस भी किया, लेकिन जैसा कि अपेक्षित है वहाँ कोई सुनवाई नहीं हुई, बदले में जो लेबर इंस्पेक्टर आया वह एचआर को समझा गया कि ऐसी स्थिति से बचने के लिए कौन से तिकड़म आज़माएँ। गार्मेण्ट फ़ैक्टरी में काम करने वाले मुकेश और उसकी पत्नी ने भी घटती दिहाड़ी की शिकायत की और बताया कि खाते में लॉकडाउन का पैसा डाला तो गया, लेकिन फिर वापस ले लिया गया। उसने बताया कि उसकी फ़ैक्टरी में तीन-चार लोग ही काम करते हैं और लगभग सभी एक्सपोर्ट हाउस में ऐसे ही दस से कम या दस-बीस या मुश्किल से तीस काम करते हैं। ये सूक्ष्म उद्योग किसी भी श्रम क़ानून के दायरे में नहीं आते, इसलिए समझा जा सकता है कि इनकी काम और मज़दूरी की स्थिति कितनी बदतर होती होगी।

औरतें दोहरी ग़ुलामी झेलती इस औद्योगिक क्षेत्र में भी समान काम का समान पैसा नहीं पाती हैं। यदि गार्मेण्ट सेक्टर की ही बात की जाये तो इन कम्पनियों में मज़दूरों की मासिक आय औसतन 8,000 से 9,000 रुपये के क़रीब है, लेकिन लॉकडाउन के बाद से रोज़गार और मज़दूरी में भारी गिरावट आयी है। गार्मेण्ट एक्सपोर्ट में पुरुषों के लिए 220 रुपये या उससे कम तो महिलाओं को समान काम के लिए 180 से 200 रुपये तक या इससे भी कम दिहाड़ी मिल रही है। इतना ही नहीं औरतों का कहना है कि उनके साथ भेदभाव का व्यवहार होता है, सुपरवाइज़र गाली-गलौच करता है और छोटी-छोटी ग़लतियों पर भारी-भरकम फ़ाइन लगा देता है। इन्हें प्रसुति के लिए कोई छुट्टी नहीं मिलती, लेकिन कारख़ाने के गेट का रास्ता ज़रूर दिखला दिया जाता है।

एक जानलेवा और ख़तरनाक स्थिति : ओखला वेस्ट मैनेजमेण्ट प्लाण्ट

ओखला औद्योगिक क्षेत्र में ही एक क्षेत्र है ओखला वेस्ट मैनेजमेण्ट ज़ोन, जो दिल्ली का सबसे बड़ा वेस्ट मैनेजमेण्ट ज़ोन है। यह वहाँ रह रहे 10 लाख लोगों की रिहायश के लिए जानलेवा स्थिति पैदा करता है जिसमें मज़दूरों और आम मेहनतकशों की बस्तियाँ आती हैं। यहाँ वेस्ट से बिजली पैदा करने की कम्पनी जिन्दल की है, साथ ही यहाँ सीवर ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट लगाने की भी योजना है। जिन्दल की यह कम्पनी मिट्टी, पानी और हवा को जानलेवा स्तरों पर प्रदूषित कर रही है जिस पर पिछले कई वर्षों से सवाल उठाये जा रहे हैं, लेकिन कहीं कोई सुनवाई नहीं। जामिया की शोधकर्ता समीरा सुल्तान के एक अध्ययन के अनुसार इस बिजली पैदा करने के फ़र्नेस में गीले कचरे और अक्रिय पदार्थों को अलग-अलग नहीं किया जाता, जिसकी वजह से दो बेहद ख़तरनाक रासायनिक पदार्थ, डायॉक्सीन्स और फ़्यूरेन्स उत्सर्जित होते हैं, जिसकी वजह से पानी में ज़हरीले भारी धातु (हेवी मेटल) मिल रहे हैं। पानी के इस प्रदूषण से तीव्र ब्रॉन्काइटिस, ख़ासकर बच्चों और नवजात शिशुओं में सांस की जानलेवा बीमारी, पीलिया तथा गर्भवती महिलाओं के लिए घातक स्थिति पैदा हो रही है। स्वास्थ्य स्थिति इतनी गम्भीर और चिंताजनक है, लेकिन उसमें सुधार करने की जगह सरकार एक और पहले से कहीं बड़ा सीवेज ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट जिन्दल के साथ पीपीपी मॉडल के तहत बनाने जा रही है। कहा जा सकता है कि यह व्यवस्था फ़ैक्टरियों और कारख़ाना में मज़दूरों और आम मेहनतकश आबादी का शोषण मात्र ही नहीं करती बल्कि उसकी रिहायश और जीने की बुनियादी ज़रूरतों को भी उससे छीनकर हर जगह एक समान नार्कीय स्थिति का निर्माण करती है।

रिहायश के बुरे हालात

दस से बारह घण्टे काम करने के बाद घर वापस लौटते मज़दूर नयी जद्दोजहद में जुट जाते हैं। जब मज़दूर स्त्री-पुरुष थक-हारकर घर लौटते हैं तो छोटी-छोटी बिना हवा, रोशनी की कोठरियों में खाना बनाते हैं और उसी में सपरिवार सो जाते हैं और फिर अगले दिन उठकर शोषण की चक्की में पिसने को निकल जाते हैं। पानी सप्लाई में आता नहीं, टैंकर की लाइन लगानी पड़ती है। सघन रिहायशी इलाक़ों में पतली-संकरी गलियों का जाल सा बिछा होता है, छोटे-छोटे कमरे और कमरों के ऊपर बॉक्स से बने कमरे, जहाँ धूप और पानी कुछ नहीं पहुँचता,

(पेज 2 पर जारी)

दिल्ली नगर निगम के उपचुनाव में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) की भागीदारी

बीते दिनों दिल्ली नगर निगम की पाँच सीटों पर उपचुनाव हुए। इन उपचुनावों ने फिर से यह साबित कर दिया कि पूँजीवादी व्यवस्था में धनबल-बाहुबल के दम पर ही चुनाव लड़े और जीते जाते हैं। इस धनबल-बाहुबल के समक्ष मज़दूरों-मेहनतकशों का स्वतंत्र पक्ष खड़ा करने के उद्देश्य से भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने भी शाहाबाद डेयरी सीट पर चुनाव में भागीदारी की।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी एक ऐसी पार्टी है जिसे स्वयं मज़दूरों और मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संगठनकर्ताओं ने खड़ा किया है। इस पार्टी का उद्देश्य मज़दूर वर्ग के अन्तिम लक्ष्य यानी कि मज़दूर सत्ता और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए काम करना है। इस लम्बी लड़ाई के एक अंग के तौर पर पूँजीवादी चुनावों में भी पार्टी हिस्सेदारी करती है ताकि मज़दूरों और आम मेहनतकश आबादी के राजनीतिक पक्ष और वर्ग हितों को मज़बूती से पेश किया जा सके।

वार्ड 32 एन, रोहिणी-सी वार्ड के उपचुनाव में आर.डब्ल्यू.पी.आई. ने इसी मक़सद से भागीदारी की। इस वार्ड में रोहिणी सेक्टर 24-25 और मुख्यतः शाहाबाद डेयरी का इलाक़ा आता है। इस वार्ड में वोटरों की संख्या क़रीब 72 हज़ार है जिनमें बड़ी आबादी मज़दूरों-मेहनतकशों की है। इस पूरे इलाक़े में मज़दूर पार्टी ने सघन अभियान चलाया और लोगों तक अपनी बात पहुँचायी।

पिछले तमाम चुनावों में पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियाँ सिर्फ़ जुमले उछालकर जीतती आयी हैं, पर यहाँ की असल समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं।

शाहाबाद डेयरी में तीस से चालीस हज़ार आबादी असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है, जो घरेलू कामगारों, कारख़ाना मज़दूरों से लेकर रेहड़ी-खोमचा लगाने वालों की है। इसमें से क़रीब बीस से तीस प्रतिशत दलित मज़दूरों की आबादी है। शाहाबाद डेयरी को बसे लगभग पचास वर्ष हो गये हैं, पर यहाँ जीवन जीने के लिए बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं पहुँची हैं। इसके बहुत बाद बसे रोहिणी के सेक्टरों की मध्यवर्गीय आबादी के लिए सारी सुविधाएँ उपलब्ध करा दी गयी हैं पर यहाँ हर तरफ़ आपको बजबजाती नालियाँ, कूड़े का ढेर व उससे आती असह्य बदबू मिलेगी। अभी तक झुग्गियों में पानी की पाइपलाइन नहीं बिछी है। पानी के लिए चार दिनों में एक बार टैंकर आता है, वह भी आबादी के हिसाब से बहुत कम होता है। गर्मियों में तो हालात बहुत ही बुरे हो जाते हैं। डिस्पेंसरी के नाम पर बस एक कमरा है, जो कि जुए के अड्डे में तब्दील हो गया है और इलाज कराने के लिए लोगों को कई-कई किलोमीटर दूर जाना पड़ता है। फ़ैक्टरियों, कोठियों में हाड़-मांस गलाने के बाद मेहनतकश अपने छोटे-छोटे दड़बेनुमा कमरों में बुनियादी सुविधाएँ तक न होने के कारण जैसे-तैसे जी लेते हैं।

निगम उपचुनाव की घोषणा होते ही सारी चुनावबाज़ पार्टियों के नेता अपने-अपने महल से बाहर निकले और बरसाती मेंढक की तरह हर तरफ़ उछल कूद करने लगे। धनबल-बाहुबल का उपयोग इस छोटे से चुनाव में भी बख़ूबी देखा गया। निगम के चुनाव में हर पार्टी ने अपने बड़े-बड़े नेता-मंत्री तक को उतारा।

'आम आदमी पार्टी' की तरफ़ से ख़ुद केजरीवाल, मनीष सिसोदिया प्रचार के लिए उतरे और जमकर झूठे वादों की दुकान सजायी। जो केजरीवाल और उसके विधायक घरेलू कामगारों को मज़दूर का दर्जा देने पर चुप मार कर बैठे रहते हैं, वे शाहाबाद डेयरी को सीवर के नाम पर एक सौ करोड़ रुपये का झुनझुना बजा रहे थे। पिछले साल ही विधानसभा चुनाव में झुग्गी के बदले मकान, ठेका प्रथा ख़त्म करना जैसे जो झूठे वादे उछाले गये थे, आज उनको भूलकर नयी लफ़्फ़ाज़ियाँ की जा रही थीं।

भाजपा ने भी मनोज तिवारी से लेकर दिनेश लाल यादव निरहुआ, स्थानीय सांसद हंसराज हंस के साथ गौतम गम्भीर, आदेश गुप्ता जैसों को अपनी ज़हरीली राजनीति की बीन बजाने के लिए उतारा। भाजपा की तरफ़ से इस निगम उपचुनाव में बस मोदी-शाह की ही कमी थी। भाजपा ने दिल्ली के अपने सारे नेताओं को उतार दिया। रेल से लेकर तेल बेच चुके, करोड़ों को बेरोज़गार कर चुके, मज़दूरों को ग़ुलाम बनाने पर तुले इन संघी गुबरैलों के लिए इस निगम चुनाव में भी क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता की घिनौनी राजनीति के अलावा कुछ नहीं बचा था।

वहीं बसपा जो सीवर में हो रही मौतों पर, दलित मेहनतकशों के साथ हो रहे उत्पीड़न पर हमेशा चुप रहती है, वह भी चुनाव में लोगों को जाति के नाम पर बाँटकर अपना वोट बैंक बनाने की कोशिश में जुटी थी। कांग्रेस ने भी 70 सालों तक देश की जनता को लूटने के अनुभवों से सीखकर, फिर से लूटने का सपना देखते हुए सारी ताक़त लगायी। सभी पार्टियों के उम्मीदवार भी फ़ैक्टरी मालिक, बड़े ठेकेदार, दलाल ही थे जो लम्बे समय से अपनी पार्टियों के साथ मिलकर लोगों को लूटने में संलग्न रहे हैं।

इस चुनाव में करोड़ों रुपये का ख़र्चा सारी चुनावबाज़ पार्टियों ने किया और चुनाव आयोग हमेशा की तरह गांधीजी के तीन बन्दरों की भूमिका अदा करता रहा। किराये पर बुलायी गयी भीड़ से बड़ी-बड़ी रैलियाँ निकाली गयीं, हर गली में पार्टियों के बड़े-बड़े पोस्टर-बैनर-कटआउट लगे थे, कानफाड़ू आवाज़ के साथ हर दूसरे मिनट इनकी प्रचार गाड़ियाँ गलियों से गुज़रती रहती थीं।

इसी धनबल-बाहुबल के बरक्स भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने मज़दूरों-मेहनतकशों के दम पर ही पूरे चुनाव का ख़र्च भी उठाया। आर.डब्ल्यू.पी.आई के कार्यकर्ताओं, वॉलण्टियरों तथा शुभचिन्तकों ने चुनाव प्रचार अभियान में भागीदारी की व जनता के बीच के असल मुद्दों को उठाया। उन्होंने पूँजीवादी पार्टियों की राजनीति का भण्डाफोड़ किया और बताया कि किस तरह से ये जनता से वसूले गये टैक्सों पर अय्याशी करती हैं। इस व्यवस्था के भीतर भी जो काम हो सकते हैं वह भी नहीं किये जाते तथा जनता की पीठ पर सवार नेताशाही और अफ़सरशाही सारे संसाधनों की आपस में बन्दरबाँट कर लेती हैं। उन्होंने यह भी बताया कि अगर मज़दूर पार्टी की उम्मीदवार जीतती हैं तो क्या-क्या किया जा सकता है। जिन मुद्दों को लेकर मज़दूर पार्टी व उसकी उम्मीदवार अदिति खड़ी थीं, उन मुद्दों पर संघर्ष आगे भी जारी रहेगा।

उन्होंने बताया कि यह पार्टी स्वयं मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश व्यक्तियों द्वारा दिये गये आर्थिक सहयोग के दम पर काम करती है और यह किसी भी देशी-विदेशी कम्पनी, पूँजीपति घराने, सरकार, एनजीओ, फ़ण्डिंग एजेंसी, चुनावी ट्रस्ट या किसी अन्य पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टी से किसी भी प्रकार का चन्दा या फ़ण्ड नहीं लेती। यह महज़ आर्थिक नहीं बल्कि एक राजनीतिक सवाल है, क्योंकि जो पार्टी मज़दूरों और मेहनतकशों के आर्थिक संसाधनों पर खड़ी होती है, केवल वही पार्टी मज़दूर और आम मेहनतकश जनता के वर्ग हितों की सही मायने में नुमाइन्दगी कर सकती है।

आर.डब्ल्यू.पी.आई ने इस उपचुनाव में मुख्यत: इन माँगों को लेकर भागीदारी की थी :

1. शाहाबाद डेयरी में पानी की पाइपलाइन की व्यवस्था तत्काल की जाये।

2. नालियों की व्यवस्था के साथ-साथ साफ़-सफ़ाई का इन्तज़ाम किया जाये।

3. शाहाबाद डेयरी में निगम के स्कूलों की बेहतर व्यवस्था की जाये।

4. निगम के अस्पतालों को दुरुस्त किया जाये, जहाँ नि:शुल्क स्वास्थ्य देखभाल की गारण्टी हो।

5. सड़कों व पार्कों के निर्माण व रख-रखाव की उचित व्यवस्था की जाये।

6. आबादी के अनुसार राशन की दुकानें खोली जायें व मज़दूर रसोई की व्यवस्था की जाये।

7. साठ साल से अधिक उम्र वाले बुज़ुर्गों की संख्या जानने के लिए सर्वेक्षण किया जाये और सभी बुज़ुर्गों के लिए तत्काल वृद्धावस्था पेंशन की व्यवस्था की जाये।

8. इलाक़े में स्थित सामुदायिक भवनों के उचित रख-रखाव की व्यवस्था की जाये और आबादी के अनुपात में सामुदायिक भवनों का निर्माण किया जाये।

9. मज़दूर पार्टी की उम्मीदवार जीतने पर कुशल श्रमिक जितना ही वेतन लेंगी, बाक़ी पैसा इलाक़े के कामों में इस्तेमाल किया जायेगा।

10. पार्षद के पास आने वाले कुल फ़ण्ड का आवंटन जन-कमेटियों द्वारा किया जायेगा व इसका मासिक ऑडिट किया जायेगा और निर्णय लेने का काम जनता द्वारा गठित मोहल्ला कमेटियाँ करेंगी।

11. निगम द्वारा एम्बुलेन्स व शव-वाहन की सुविधा सुनिश्चित की जायेगी।

– बिगुल संवाददाता

फ़िलिस्तीनी मज़दूरों ने ज़ायनवादी, रंगभेदी इज़रायली मालिक को घुटनों पर झुकाया

– लता

फ़िलिस्तीन की ज़मीन के बहुत बड़े हिस्से पर ज़ायनवादी इज़रायलियों ने क़ब्ज़ा कर अपनी बस्तियाँ बसा ली हैं और रोज़ाना ज़मीन हड़पते जा रहे हैं। फ़िलिस्तीन की जनता हर दिन हर पल अपने देश-ज़मीन-हक़ और अधिकार के लिए इज़रायली ज़ायनवादियों से जूझ रही है। यह संघर्ष सीधे-सीधे अपने देश की ज़मीन और घरों पर इज़रायलियों के ज़बरन क़ब्ज़े के ख़िलाफ़ संघर्ष से लेकर अन्य कई रूप अख़्तियार करता है। फ़िलिस्तीन की आबादी इज़रायल में सबसे सस्ती श्रम शक्ति के रूप में भी काम करती है। इज़रायल अपनी ज़हरीली ज़ायनवादी सोच के तहत फ़िलिस्तीनियों को बेघर कर देता है, उन्हें जेलों में बन्द कर देता है और सड़कों पर मौत के घाट उतार देता है। सड़कों पर गोलियों से भूनते समय या जेलों में ठूँसते समय यह बच्चों, बूढ़ों और औरतों में कोई फ़र्क़ नहीं करता।

ये ज़ायनवादी इज़रायली, जिनसे हमारे देश की संघी आबादी भी नये-नये तरीक़े सीखती है, ऐसे घृणित, मानवद्रोही और कुत्सित नारों या नीतियों का निर्माण करते हैं, जिनकी कल्पना कोई इन्सान अपने सबसे बुरे सपने में भी नहीं कर सकता। इन्हीं नारों में से हाल में एक नारा आया था "एक को गोली दागो और दो को मारो" यानी गर्भवती महिलाओं को चुन-चुनकर मौत के घाट उतारो। आप सोच ही सकते हैं कि **ऐसी मानवद्रोही सोच रखने वाले इज़रायली मालिक अपने कारख़ानों के फ़िलिस्तीनी मज़दूरों के साथ कैसा व्यवहार करते होंगे।** लेकिन ऐसे रंगभेदी माहौल तथा ज़ायनवादी क़ानून होने के बावजूद फ़िलिस्तीनी मज़दूरों ने अपने अधिकारों को हासिल करने के लिए संघर्ष का साथ नहीं छोड़ा और वाटर फ़िल्टर बनाने वाली फ़ैक्टरी के मालिक को अपनी हड़ताल और एकजुटता के बल पर झुका दिया।

पहली जनवरी को विदेशों में निर्यात (एक्सपोर्ट) के लिए पानी का फ़िल्टर बनाने वाली यामित शिनोन कम्पनी में काम करने वाले 75 मज़दूरों ने काम की अमानवीय परिस्थितियों, कम मज़दूरी, पीएफ़ फ़ण्ड में धान्धली आदि मुद्दों को लेकर फ़िलिस्तीन न्यू फ़ेडरेशन ऑफ़ ट्रेड यूनियन के नेतृत्व में हड़ताल कर दी। काम करने की बेहद ख़राब परिस्थितियों के अलावा वेतन तो बेहद कम थे ही, साथ ही कम्पनी ने 2016 से उनके पीएफ़ फ़ण्ड को फ़्रीज़ कर दिया था और फिर मज़दूरों को बिना बताये उस फ़ण्ड से दस लाख डॉलर ख़र्च कर दिया। सात दिन तक हड़ताल जारी रखने पर भी कम्पनी का मालिक टस से मस नहीं हुआ बल्कि बेहद अहंकार भरा जवाब लिखा, जिसमें चिट्ठी पर बड़े अक्षरों में लिखा था 'नहीं' और साथ में लिखा था कि फ़िलिस्तीनी मज़दूर बस उतने के ही क़ाबिल हैं जितना उन्हें मिल रहा है।

बदले में मज़दूरों ने भी कमर कस ली। न केवल हड़ताल जारी रखी बल्कि भरसक अपने समर्थन में लोगों को जुटाना शुरू किया। मालिक को पुलिस, प्रशासन और क़ानून का अहंकार होता है। यह पूँजीपति भी इसी अहंकार के बल पर अपने मुनाफ़े की दर बनाये रखने के लिए कारख़ाना जल्द से जल्द खोलने का प्रयास करने लगा, मज़दूरों को नौकरी से निकालने का भय दिखाया और नयी भर्तियों की धमकियाँ दीं। यहाँ मज़दूरों के बीच वर्ग एकता का ज़बर्दस्त उदाहरण देखने को मिलता है। मज़दूर एकजुट खड़े रहे और सभी स्तरों पर अपने संघर्ष के विस्तार तथा प्रचार में लगे रहे। न केवल फ़ैक्टरी के बाहर के मज़दूरों के बीच प्रचार-प्रसार किया गया बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी इस संघर्ष के लिए समर्थन जुटाया गया। इस हड़ताल को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर काफ़ी समर्थन मिला। उसकी कम्पनी यामित को अन्तर्राष्ट्रीय बहिष्कार का समाना करना पड़ा। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हुए बहिष्कार ने उसके निर्यात आधारित व्यवसाय को इतनी बुरी तरह प्रभावित किया कि उसे हड़ताली मज़दूरों से अपने अपमान भरे पत्र के लिए माफ़ी माँगनी पड़ी। मज़दूरों की एकता और लगातार संघर्ष जारी रखने का ही नतीजा था कि कम्पनी के मालिक को झुकना पड़ा। मज़दूरों ने सारी विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए 19 दिनों तक हड़ताल जारी रखी। अन्त में मालिक मज़दूरों से यह समझौता करने को राज़ी हुआ :

- मज़दूर काम पर लौट जायेंगे और कम्पनी के साथ तीन महीने के दौरान समझौता वार्ता जारी रखेंगे।

- इस दौरान मज़दूरों को वेतन में 200 डॉलर बढ़कर मिलेगा।

- सामान्य तौर पर इज़रायली मज़दूरों को वार्षिक तौर पर जुलाई में मिलने वाले सवेतन अवकाश अब फ़िलिस्तीनी मज़दूरों को भी दिये जायेंगे।

- रिटायरमेंट के बाद सेवा लाभ दिये जायेंगे।

- मज़दूरों की समिति की रज़ामन्दी के बिना कम्पनी नये मज़दूरों को काम पर नहीं रख सकती।

हालाँकि इन माँगों को अभी इज़रायली न्यायालय से पास होकर पक्का होना है जिसमें तीन महीने लगेंगे, लेकिन फिर भी यह एक बड़ी जीत है। इन मज़दूरों ने एक बार फिर यह साबित कर दिया कि एकता और सही राजनीति और आन्दोलन की बेहतर रणनीति मज़दूरों के संघर्ष को मज़बूत बनाती है।

मज़दूर आन्दोलन में नौसिखियापन और जुझारू अर्थवाद की प्रवृत्ति से लड़ना होगा

– सनी सिंह

हाल ही में दिल्ली से लगे कुण्डली औद्योगिक क्षेत्र में ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ के कार्यकर्ता नौदीप कौर और शिवकुमार को हरियाणा पुलिस ने गिरफ़्तार किया और उनका हिरासत के दौरान भयानक दमन किया गया। नौदीप कौर को न सिर्फ़ बेरहमी से पीटा गया बल्कि पुरुष पुलिस वालों द्वारा उनके गुप्तांगों पर प्रहार किया गया। शिवकुमार को पुलिस ने गैर क़ानूनी तरीके से हिरासत में रखकर पीटा और गिरफ़्तारी के लम्बे समय बाद काफ़ी विरोध होने पर उनकी मेडिकल जाँच करायी गयी। शिवकुमार के पैरों के नाखून तक नीले पड़ गये हैं। नौदीप कौर के ऊपर कई फ़र्ज़ी मुक़दमे डाले गये पर मीडिया और सोशल मीडिया के कारण बने दबाव में करीब एक महीने बाद उन्हें हरियाणा-पंजाब कोर्ट से ज़मानत मिल गई। शिवकुमार को अभी भी ज़मानत नहीं मिली है।

इस पुलिसिया दमन का पुरज़ोर विरोध होना चाहिए। पूँजीवादी सरकार, पुलिस और मालिकान मज़दूरों के हर उभार को कुचलना और उसके नेताओं को गिरफ़्तार कर, डराकर चुप कराना चाहते हैं। कुण्डली में मालिकों के संगठन कुण्डली इण्डस्ट्रिसल एसोसिएशन ने बाउंसरों की क्विक रेस्पोंस टीम बनायी है जो कि मज़दूरों के हर प्रतिरोध को कुचलने का काम करती है। 28 दिसम्बर को ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ के नेतृत्व में मज़दूर बकाया पैसा माँगने के लिए जब एक फैक्ट्री के आगे एकजुट थे तो उनपर बाउंसरों की क्विक रेस्पोंस टीम ने गोली चलायी। परन्तु पुलिस ने बाउंसरों और मालिकों पर कोई कार्रवाई नहीं की।

गुडगाँव और मानेसर के औद्योगिक क्षेत्र व देश में विकसित हो रही नयी औद्योगिक पट्टियों की तरह कुण्डली औद्योगिक क्षेत्र में भी पुलिस-मालिक गठजोड़ व बाउंसरों और स्थानीय मकानमालिकों के दम पर मज़दूरों के हर प्रतिरोध को बर्बर तरीके से कुचल दिया जाता है। दिल्ली एनसीआर से लेकर चेन्नई, गुजरात तक में दमन के तरीके अमेरिकी पूँजीपतियों की पिंकर्टन एजेंसी के गुण्डों द्वारा शिकागो के मज़दूर आन्दोलन को तोड़ने के प्रयासों की याद दिलाता है। इस दमन का प्रतिरोध करने के लिए मज़दूर वर्ग को गोलबन्द करना होगा।

नौदीप और शिवकुमार की गिरफ़्तारी और पुलिस उत्पीड़न का देशभर में व्यापक विरोध हुआ, ख़ासकर इसलिए कि उनकी गिरफ़्तारी को किसानों के आन्दोलन से जोड़कर देखा गया। इस दमन-उत्पीड़न का प्रतिरोध आज का ज़रूरी सवाल है, लेकिन मज़दूर आन्दोलन के नज़रिए से कुछ और बेहद बुनियादी सवाल हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए, मगर अक्सर नहीं किया जाता है। हमें इस घटना के विस्तार में जाकर ये सवाल भी पूछने चाहिए कि क्यों नौदीप कौर और शिवकुमार की गिरफ़्तारी के बाद कुण्डली औद्योगिक क्षेत्र में मज़दूरों का प्रतिरोध संगठित नहीं हो सका? इन मज़दूर नेताओं की अगुवाई में चल रहा आन्दोलन इनकी गिरफ़्तारी के बाद बिखर गया और उन्हें केवल जनवादी अधिकार संगठनों व अन्य मज़दूर संगठनों का समर्थन मिला। (किसान संगठनों ने भी गिरफ़्तारी की निन्दा की, लेकिन बहुत बाद में चौतरफ़ा दबाव बनने के बाद।)

इसका जवाब तभी मिल सकता है जब हम ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ की राजनीति, सांगठनिक लाइन व प्रचार के तौर-तरीक़ों पर नज़र डालें। इस प्रक्रिया में ही यह साफ़ हो जाएगा कि ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ की राजनीति दुस्साहसवादी और अर्थवादी है व सांगठनिक समझदारी में नौसिखियापन मौजूद है। यह मज़दूर आन्दोलन को नुक्सान पहुँचाने वाली प्रवृत्ति है जिससे दृढ़ता के साथ वैचारिक संघर्ष चलाया जाना चाहिए।

मज़दूर अधिकार संगठन के संघर्ष का घटनाक्रम

बकौल नौदीप कौर ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ 3 साल से सोनीपत ज़िले में आने वाले कुण्डली औद्योगिक क्षेत्र में काम कर रहा है। अभी तक संगठन की इतनी ताक़त और स्थिति नहीं थी कि वे मज़दूरों के बकाये पैसे दिलाने के लिए लड़ें। यह स्थिति तब बनी जब धनी किसानों के आन्दोलन के दौरान सिंघू बॉर्डर पर किसान आबादी का भारी जमावड़ा हुआ। ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ धनी किसान आन्दोलन के समर्थन में सिंघू बार्डर पर मौजूद रहा। किसान आन्दोलन से मिली ताक़त (यानी किसान आन्दोलन के कार्यकर्ताओं के साथ) से वे मज़दूरों की बकाया राशि दिलवाने का काम कर सके। मज़दूरों की बकाया रकम दिलवाने के बैनर के साथ ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ ने सिंघू बॉर्डर पर तम्बू लगाया था। किसान आन्दोलन का जमावड़ा बिलकुल औद्योगिक क्षेत्र के बीचोबीच ही पड़ता है। पत्रकार मनदीप पुनिया ने ‘ट्रॉली टाइम्स’ में ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ के बारे में लिखा है कि मज़दूरों का बकाया दिलवाने में किसान भी फ़ैक्ट्रियों में जा रहे थे। 2 दिसम्बर को एक किसान संगठन के कार्यकर्ताओं के साथ इस संगठन ने मज़दूरों के रिहायशी इलाक़े से सिंघू बॉर्डर पर लगे मंच तक जुलूस निकाला। इसके बाद से ही नौदीप कौर और उनके साथियों को करीब 300 मज़दूरों के बकाया पैसे दिलवाने में सफलता मिली। इस प्रक्रिया में 28 दिसम्बर को उनके संगठन की टोली की क्विक रेस्पोंस टीम से भिड़न्त भी हुई जिसमें बाउंसरों ने फ़ायरिंग भी की। आगामी 12 जनवरी को बकाया दिलवाने के ऐसे एक और अभियान में पुलिस ने नौदीप कौर को गिरफ़्तार कर लिया। इस दौरान नौदीप कौर को पुलिस ने बेरहमी से मारा-पीटा जिस पर मज़दूरों ने भी पुलिस पर पलटवार किया। इस गिरफ्तारी के बाद मज़दूरों का बकाया दिलवाने का यह अभियान रुक गया। कुण्डली में मज़दूरों की ओर से नौदीप और शिवकुमार की रिहाई के लिए कोई प्रदर्शन नहीं हुआ। ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ के लोग सिंघू बॉर्डर के मंच पर केवल अपनी बात रखते रहे और सोशल मीडिया व जनसंगठनों के साथ मिलकर उनकी रिहाई के लिए प्रेस कांफ्रेंस व जन्तरमन्तर पर अन्य संगठनों के साथ प्रदर्शन आयोजित करते रहे।

अब हम ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ की राजनीति पर बात करेंगे जिससे आज मज़दूर आन्दोलन के लिए कुछ ज़रूरी सबक़ निकलते हैं।

‘मज़दूर अधिकार संगठन’ के नेतृत्व ने किसान आन्दोलन की लहर पर सवार होकर मज़दूरों का पैसा दिलवाया। ‘ट्रॉली टाइम्स’ में ही आये लेख में नौदीप कौर कहती हैं कि किसानों की वजह से क्विक रेस्पोंस टीम और हिन्दू जागृति मंच (स्थानीय मकानमालिकों का संगठन) अब हमें परेशान नहीं करता और हम मज़दूरों का पैसा दिलवाने में कामयाब हुए हैं। ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ के फ़ेसबुक पेज पर पड़े वीडियो में भी दिखता है कि नौदीप कौर और उनके साथ 20 से लेकर 50 मज़दूर कई फैक्ट्री गेटों पर मज़दूरों का पैसा दिलवाने के लिए गेटों पर प्रदर्शन करते रहे। इन आर्थिक मुद्दों पर संघर्ष में भी इस संगठन में दुस्साहसवाद झलकता है जो जनता को संगठित किये बिना ही संघर्ष में कूद पड़ते हैं। केवल किसान आन्दोलन के भरोसे 20-25 मज़दूरों के साथ सोनीपत के कुण्डली औद्योगिक क्षेत्र में पुलिस-प्रशासन-मालिक-मकानमालिक गठजोड़ से जीता नहीं जा सकता है। उनकी गतिविधियों को देखें तो साफ़ हो जाता है कि ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ सुव्यवस्थित योजना के तहत मज़दूरों का राजनीतिक प्रशिक्षण करने की जगह उत्तेजनापूर्ण क़दमों के जरिए मज़दूरों को संगठित करना चाहता है। यह पहली बार नहीं है जब ऐसा हुआ हो। लॉकडाउन के वक्त मज़दूरों को बकाया पैसा दिलवाने पर भी ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ ने जुझारू अभियान चलाया था जिसे हिन्दू जागृति मंच के गुंडों के दमन के बाद रोकना पड़ा था। हिन्दू जागृति मंच मालिकों से चन्दा लेने वाला इलाक़े के मकानमालिकों का संगठन है। उस दौरान भी ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ के कार्यकर्ता को हिन्दू जागृति मंच के गुण्डों ने अगवा कर लिया था और बाद में पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया था।

दूसरा, पूरा घटनाक्रम बताता है कि ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ मज़दूरों को राजनीति के आधार पर संगठित किये बिना केवल उनकी आर्थिक माँगों पर ही जुझारू आन्दोलन कर रहा था। धनी किसानों के आन्दोलन की मुख्य माँग, यानी लाभकारी मूल्य की माँग, मज़दूर हितों के ख़िलाफ़ जाती है, फिर भी उस आन्दोलन का समर्थन करना भी संगठन में राजनीतिक चेतना की कमी की ओर इशारा करता है। सोनीपत के कई मज़दूर ख़ुद पंजाब, हरियाणा में इन धनी किसानों के खेतों में लूटे जाते हैं। हैरत की बात यह यह कि ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ के सदस्य ही पंजाब और हरियाणा के कुलकों और धनी किसानों को सामन्त बताते हैं और इनके ख़िलाफ़ “मज़दूर, किसान, निम्नपूँजीपति और राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग” को संगठित करने की बात करते हैं। नौदीप कौर अम्बानी को अमरीका का दलाल बताती हैं और भारत की उत्पादन प्रणाली को अर्द्धऔपनिवेशिक अर्द्धसामन्ती मानती हैं। परन्तु यहाँ तो कुछ और ही नज़ारा था। अगर ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ के कार्यकर्ताओं के मूल्यांकन के अनुसार देखें, तो वे सामन्तों की सहायता से राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग (सोनीपत के छोटे औद्योगिक पूँजीपति) के खिलाफ़ आर्थिक संघर्ष लड़ रहे थे! भारत को अर्द्धसामन्ती अर्द्ध औपनिवेशिक सामाजिक संरचना मानने वालों को धनी किसान आन्दोलन के समर्थन को सही ठहराने के प्रयास में काफी मशक्कत करनी पड़ रही है। खुद ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ के ही सदस्यों के अनुसार वे किसान आन्दोलन से पहले सुषुप्त थे और किसान आन्दोलन के चलते उनमें हरकत आयी। ‘मज़दूर बिगुल’ में हम इस कुलक आन्दोलन पर तमाम क्रान्तिकारी संगठनों की गलत अवस्थिति की आलोचना लगातार लिखते रहे हैं। वैसे नौदीप कौर ज़मानत मिलने के बाद अकाली दल और दिल्ली गुरुद्वारा कमिटी के नेताओं से ‘जो बोले सो निहाल…’ के नारों के बीच सम्मानित भी हुईं। यह इनकी राजनीतिक अवसरवादिता को बताता है। ख़ैर, इस अवसरवादिता पर हम आगे विस्तारपूर्वक लिखेंगे, फिलहाल लेख के मूल सवाल पर वापस लौटते हैं।

तीसरी बात यह कि मज़दूर आन्दोलन में मज़दूर नेताओं की गिरफ़्तारी तो हमेशा ही होती है परन्तु अगर कोई संगठन किसी गिरफ़्तारी के बाद आन्दोलन को जारी न रख पाये तो वह संगठन नौसिखियापन का शिकार है। ऊपर बताये घटनाक्रम से यह भी साफ़ है कि ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ किसान आन्दोलन की लहर पर सवार था और नौदीप कौर की गिरफ़्तारी के बाद तुरन्त ही आन्दोलन बिखर गया। संगठन के पास नेताओं की गिरफ़्तारी के बाद भी संघर्ष को चलाने की कोई योजना नहीं थी। ऐसा केवल एक बार नहीं बल्कि दो बार हो चुका है। दोनों बार ही मज़दूरों के बीच आन्दोलन पूरी तरह बिखर गया।

कुल मिलाकर कहें तो ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ के नेतृत्व में चला आन्दोलन दुस्साहसवाद, जुझारू अर्थवाद और सांगठनिक तौर पर नौसिखियापन का शिकार रहा है। लेनिन ने सांगठनिक नौसिखियापन को दुस्साहसवाद और अर्थवाद की अभिव्यक्ति कहा था। एक इस्पाती क्रान्तिकारी संगठन राजनीतिक संघर्ष को स्थायित्व, ऊर्जा और निरन्तरता प्रदान करता है परन्तु नौसिखियापन इसे स्थापित नहीं होने देता है। लेनिन ‘क्या करें’ पुस्तक में बताते हैं कि अर्थवादी ‘रोबोचेयो देलो’ पंथी नौसिखुआपन के चलते ही ऐसे संगठन को गैरज़रूरी मानते हैं जो “राजनीतिक असन्तोष, विरोध और क्रोध के हर प्रकार के सभी रूपों को एक लड़ी में पिरोकर उन्हें एक संयुक्त आक्रमण का रूप दे सके, जो पेशेवर क्रान्तिकारियों का संगठन हो और जिसका नेतृत्व समस्त जनता के सच्चे राजनीतिक नेता करते हों।… संगठन के स्वयंस्फूर्त ढंग से विकसित होते जा रहे रूपों की पूजा करना, इसे न महसूस करना कि हमारा सांगठनिक काम कितना संकुचित और निम्न कोटि का होता है और इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में हम अभी तक कितने “नौसिखुए ढंग से” काम कर रहे हैं – यह न महसूस करना, मैं कहता हूँ, सचमुच हमारे आन्दोलन की एक बीमारी बन गया है।”

आगे लेनिन विस्तार से स्पष्ट करते हैं कि नौसिखियापन क्या होता है। हम यह बड़ा उद्धरण इसलिए दे रहे हैं क्योंकि यह ‘मज़दूर अधिकार संगठन’ के काम के तरीक़ों की ग़लती को स्पष्ट कर देता है। लेनिन 1894 से 1901 के काल के एक लाक्षणिक सामाजिक जनवादी मण्डल के कार्य का संक्षिप्त विवरण देते हैं और बताते हैं कि इस दौर में छात्र-युवाओं में मार्क्सवाद का काफ़ी प्रभाव था। लेनिन के अनुसार “ये नये योद्धा बहुत ही भौंडे हथियार और प्रशिक्षण लेकर मैदान में उतरते थे। … छात्रों का मण्डल सदस्यों से कोई सम्पर्क नहीं होता, जिसका दूसरे नगरों के मण्डलों से, यहाँ तक कि उसी शहर के अन्य भागों के मण्डलों से (या दूसरे विश्वविद्यालयों के मण्डलों से) कोई सम्पर्क नहीं होता, जो क्रान्तिकारी कार्य की विभिन्न शाखाओं का संगठन नहीं करता, जो थोड़े बहुत लम्बे समय के लिए भी कार्य की कोई विधिवत योजना नहीं बनाता, ऐसा मण्डल झट मज़दूरों से सम्पर्क क़ायम करके काम शुरू कर देता है, मण्डल धीरे-धीरे अपना प्रचार कार्य और आन्दोलन कार्य बढ़ाता जाता है, अपने काम से वह मज़दूरों के अपेक्षाकृत बड़े हिस्सों की और पढ़े-लिखे वर्गों के भी कुछ लोगों की सहानुभूति प्राप्त कर लेता है,

(पेज 10 पर जारी)

सिकुड़ती अर्थव्यवस्था, बढ़ती असमानता

(पेज 1 से आगे)

की कमाई नहीं बढ़ी और वे बचत से ख़र्चा चलाने लगे। अब यह स्थिति कहीं बदतर हो चुकी है। खाद्यान्न मुद्रास्फीति की दर लगातार दो अंकों में बनी हुई है। पिछले अक्टूबर में यह 11 प्रतिशत पहुँच गयी थी, दिसम्बर में कुछ कम हुई तो भी 9.4 प्रतिशत रही। वास्तविक महँगाई इससे कहीं ज़्यादा है। ख़ासकर जीवन की बुनियादी चीज़ों की महँगाई। पेट्रोल, डीज़ल और गैस के अन्धाधुन्ध बढ़ते दामों का चौतरफ़ा असर आने वाले दिनों में ग़रीबों की झुकी हुई कमर पर और भी बोझ डालने वाला है।

पिछली तिमाही में भारत की जीडीपी सिकुड़ कर 134 लाख करोड़ की हो गई थी। अनुमान है कि नये वित्त वर्ष में यह 149.2 लाख करोड़ की होगी। 2019-20 में भारत की जीडीपी 145.7 लाख करोड़ की थी। यानी कुल मिलाकर दो साल पहले की स्थिति में वापस आयेगी। अब अनेक बड़े अर्थशास्त्री मान रहे हैं कि आने वाले कई सालों तक जीडीपी 5 प्रतिशत से नीचे ही रहेगी। यानी निवेश कम होगा, उत्पादन कम होगा और लोगों को नौकरियाँ कम मिलेंगी। मज़दूरी और वेतन में और कटौतियाँ होंगी।

बैंकों की हालत पहले से ख़राब है। बैंकों के दिये बड़े कर्ज़े तो डूबे हुए ही थे, हाउसिंग से लेकर तमाम दूसरी तरह के कर्ज़ वापस आने की रफ़्तार भी बहुत धीमी हो गई है। बैंकों के कर्ज़ का भारी हिस्सा एनपीए हो चुका है, यानी उस पर ब्याज भी वापस नहीं आ रहा है। मोदी सरकार आने के बाद से बैंक 6,60,000 करोड़ रुपये बट्टे खाते में डाल चुके हैं। इस स्थिति में सुधार की अभी दूर-दूर तक कोई सम्भावना नहीं है। इसकी भरपाई के लिए, सरकार बैंकों को पैकेज देगी, वह भी लोगों को और निचोड़कर ही वसूला जायेगा। रिज़र्व बैंक ने पहली मार्च को कहा कि बड़े उद्योग बैंक से कर्ज़ उठा नहीं रहे हैं और उद्योगों के संकट के कारण बैंक भी उन्हें कर्ज़ देने में हिचकिचा रहे हैं। इसके साथ ही होम लोन में भी गिरावट आयी है यानी लोग घर बनवाने या ख़रीदने के लिए कर्ज़ कम ले रहे हैं। इसका सीधा असर स्टील, सीमेंट और निर्माण उद्योग जैसे सेक्टरों पर पड़ेगा।

अर्थव्यवस्था के सिकुड़ने से अमीरों के ऐशो-आराम में कमी नहीं आयेगी, पर इसका सीधा असर ग़रीबों और मेहनतकशों पर पड़ेगा। उनके श्रम की लूट और बढ़ जायेगी।

सेंटर फ़ॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकॉनमी (सीएमआईई) के अनुसार पिछले साल की तीसरी तिमाही में भारत की सबसे बड़ी 1897 कम्पनियों ने 1.33 लाख करोड़ रुपये का मुनाफ़ा कमाया, जो किसी भी तिमाही का सबसे अधिक मुनाफ़ा था। महामारी और लॉकडाउन में कम्पनियों की आमदनी घटने के बावजूद यह चमत्कार कैसे हुआ? यह इसलिए हुआ क्योंकि बड़ी कम्पनियों ने अपना ख़र्चा घटा दिया। ख़र्च कैसे कम किया? उन्होंने बड़े पैमाने पर मज़दूरों-कर्मचारियों की छँटनी की या उन्हें कम वेतन वाले कॉन्ट्रैक्ट पर रख लिया।

वैसे ये सभी कम्पनियाँ पिछले 6 साल से मुनाफ़ा कमा रही थीं। जून 2020 की तिमाही में उनका मुनाफ़ा 44.1 हज़ार करोड़ था और मार्च 2020 की तिमाही में 32 हज़ार करोड़ का। पिछली चार तिमाहियों में इन कम्पनियों का औसत मुनाफ़ा दर 50.2 हज़ार करोड़ था। इनके मुनाफ़े की दर ज़रूर नीचे जा रही थी जिसके लिए पूँजीपति लगातार होहल्ला कर रहे थे और सरकार पर तरह-तरह का दबाव बना रहे थे। लेकिन मज़दूरों को ज़्यादा से ज़्यादा निचोड़कर उनका कुल मुनाफ़ा बढ़ ही रहा था। मोदी सरकार इसमें उनकी हर तरह से मदद कर रही थी।

अर्थव्यवस्था के संकट और सुस्ती की क़ीमत तो इन कम्पनियों के मज़दूर और आम लोग ही चुका रहे थे। बेरोज़गारी, मज़दूरी में कटौती, कल्याणकारी योजनाओं पर सरकारी ख़र्च में कमी के रूप में, और सबसे बढ़कर परिवार की बुनियादी ज़रूरतों पर ख़र्च में कटौती के रूप में।

और यह हालत सिर्फ़ भारत में ही नहीं है। स्विस बैंक यूबीएस के मुताबिक, पिछले वर्ष अप्रैल से जुलाई के बीच, जब महामारी से दुनिया तबाह थी, तो विश्व के खरबपतियों की दौलत 27.5 प्रतिशत बढ़कर रिकॉर्डतोड़ 10.2 ट्रिलियन डॉलर हो गयी। यूबीएस और वैश्विक अकाउंटिंग फ़र्म प्राइसवॉटरहाउस कूपर्स की एक रिपोर्ट के अनुसार, इसी अवधि में भारत के खरबपतियों की दौलत 35 प्रतिशत बढ़कर 423 बिलियन डॉलर पहुँच गयी।

इसमें कुछ भी हैरानी की बात नहीं है। पूँजीवाद के तहत हर मानवीय त्रासदी, हर आपदा मुट्ठीभर थैलीशाहों और उनके लग्गुओं-भग्गुओं की लूट को और बढ़ाने का एक मौक़ा बन जाती है। पूँजीपतियों को सिर्फ़ और सिर्फ़ मुनाफ़ा बटोरने से मतलब होता है।

नरेन्द्र मोदी पूँजीपतियों और प्राइवेट सेक्टर का गुणगान करते नहीं थकते हैं। लालकिले से लेकर धनपतियों की सभा तक में वह उन्हें "वेल्थ क्रिएटर" (सम्पदा पैदा करने वाले) बताते हैं और कहते हैं उनकी उद्यमिता और "रचनात्मकता" से सबको फ़ायदा होता है। ख़ैर, अपने मालिकों की शान में कसीदे पढ़ना चाकरों के लिए नयी बात नहीं है। लेकिन असलियत यह है कि वे सिर्फ़ लुटेरे हैं और देश के लोगों की मेहनत और देश के संसाधनों को लूटकर अपनी तिजोरियाँ भरना ही उनका काम है।

इसी का नतीजा है कि देश में ग़रीबों, बेरोज़गारों, बेघर लोगों की तादाद लगातार बढ़ती ही गयी है। देश की लगभग 46 करोड़ मज़दूर आबादी में से 93 प्रतिशत, या 43 करोड़ मज़दूर असंगठित क्षेत्र में धकेल दिये गये हैं, जहाँ वे बिना किसी क़ानूनी सुरक्षा के ग़ुलामों जैसी परिस्थितियों में काम करने के लिए मजबूर हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार 45 करोड़ भारतीय ग़रीबी रेखा के नीचे जी रहे हैं, जिसका अर्थ है कि वे भुखमरी की कगार पर बस किसी तरह ज़िन्दा हैं। अनुमान लगाया जा रहा हैकि कोरोना काल की नीतियों के कारण आने वाले वर्षों में लगभग चालीस करोड़ और आबादी खिसककर ग़रीबों की जमात में जा सकती है।

ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट के अनुसार पिछले वर्ष देश में पैदा हुई कुल सम्पदा का 73 प्रतिशत देश के सबसे अमीर एक प्रतिशत लोगों की मुट्ठी में चला गया। इस छोटे-से समूह की सम्पत्ति में पिछले चन्द वर्षों के दौरान 20.9 लाख करोड़ रुपये की बढ़ोत्तरी हुई जो 2017 के केन्द्रीय बजट में ख़र्च के कुल अनुमान के लगभग बराबर है। दूसरी ओर, देश के 67 करोड़ नागरिकों, यानी सबसे ग़रीब आधी आबादी की सम्पदा सिर्फ़ एक प्रतिशत बढ़ी। एक तरफ़ ग़रीबी लगातार बढ़ रही है, दूसरी ओर, उद्योगपतियों, राज नेताओं, ऊँचे सरकारी अधिकारियों, ठेकेदारों आदि की छोटी-सी आबादी के पास पैसों का पहाड़ लगातार ऊँचा होता जा रहा है। आम जनता की बढ़ती तबाही के बीच इस परजीवी जमात की ऐयाशियाँ बढ़ती जा रही हैं। महामारी के दौर में इस परजीवी जमात ने भी तमाम तरीकों से अपनी दौलत में इज़ाफ़ा किया।

समाज के एक छोर पर पूँजी संचय और दूसरे छोर पर ''ग़रीबी संचय'' पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया का लाज़िमी नतीजा है। अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाने की हवस और दूसरों के मुकाबले बाज़ार में टिके रहने का दबाव पूँजीपतियों को लगातार अपना पूँजी संचय बढ़ाते जाने के लिए बाध्य करता है। पूँजीपति जितना अधिक शोषण करता है संचित पूँजी उतनी ही ज़्यादा होती है और यह संचित पूँजी शोषण के नये-नये साधनों के ज़रिये मज़दूरों का शोषण और बढ़ाती जाती है। नयी-नयी मशीनें मज़दूरों को धकियाकर काम से बाहर कर देती हैं। इसके अलावा, उत्पादन तकनीकों के लगातार विकास से स्त्रियाँ और बच्चे भी भाड़े के मज़दूरों में शामिल हो जाते हैं। साथ ही देहाती क्षेत्रों में पूँजी की घुसपैठ भारी संख्या में ग़रीब व मँझोले किसानों का भी लगातार कंगालीकरण करती जाती है और वे आजीविका कमाने के लिए शहरों की ओर उमड़ पड़ते हैं। यह पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया का न टाला जा सकने वाला नतीजा है जिसके कारण आज दुनिया के पैमाने पर बेरोज़गारी बढ़ रही है। यह किसी की इच्छा से रुक नहीं सकती।

इसी तरह जब तक पूँजीवादी व्यवस्था मौजूद है तब तक दुनिया के पैमाने पर बढ़ती ग़रीबी को रोकना भी किसी की इच्छा के वश में नहीं है। मज़दूर अपनी श्रमशक्ति ख़र्च कर जो नया मूल्य पैदा करता है उसका अधिकाधिक हिस्सा पूँजीपति हड़पता जाता है और मज़दूरों की मज़दूरी का हिस्सा कम होता जाता है। राष्ट्रीय आय के वितरण में असमानता लगातार बढ़ते जाने का यह बुनियादी कारण है। इसके साथ ही लगातार बढ़ती बेरोज़गारी, मुद्रास्फीति के कारण वास्तविक आमदनी में कमी और ख़राब जीवन दशाओं के कारण मज़दूर वर्ग पूर्ण दरिद्रीकरण की अवस्था में पहुँच जाता है। पूँजीवादी समाज में मज़दूरों के पूर्ण दरिद्रीकरण की इस प्रक्रिया की चर्चा करते हुए मज़दूर वर्ग के शिक्षक और महान नेता लेनिन ने लिखा था, ''मज़दूरों का पूर्ण दरिद्रीकरण हो जाता है। यानी, वे ग़रीब से ग़रीबतर होते जाते हैं, उनका जीवन और दुखपूर्ण हो जाता है, उनका भोजन बदतर होता जाता है और पेट कम भर पाता है और उन्हें तलघरों और छोटी कोठरियों में रेवड़ों की तरह रहना पड़ता है।''

पूँजीवादी उत्पादन की इसी प्रक्रिया यानी पूँजीपतियों की मुनाफ़े और पूँजी संचय की अन्धी हवस का ही नतीजा आज हमारे देश में देखने को मिल रहा है। सकल घरेलू उत्पाद की लगातार बढ़ती वृद्धि दर लेकिन आम मेहनतकश जनता की बढ़ती दरिद्रता – ये दो विरोधी सच्चाइयाँ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भूमण्डलीकरण के इस दौर में राष्ट्रीय आय में पूँजीपति वर्ग और उसके लग्गुओं-भग्गुओं का हिस्सा लगातार बढ़ता गया है और मेहनतकशों का घटता गया है। केन्द्र और राज्य की सभी सरकारें आज देशी-विदेशी पूँजीपतियों को मेहनतकशों के शोषण की मनमानी छूट देने के साथ ही करों में भी बेतहाशा छूटें देकर उनकी तिजोरियाँ भरने के मौक़े दे रही हैं।

मेहनतकश जनता को यह समझना होगा कि उनकी बदहाली का बुनियादी कारण महज़ किसी सरकार का निकम्मापन नहीं वरन देश की मौजूदा पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली है। ये सारी सरकारें पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी के तौर पर काम करती हैं जिसका एक ही मक़सद है – अपने आकाओं के मुनाफ़े को सुरक्षित रखना और लगातार बढ़ाते जाना, चाहे इसके लिए जनता को कितना भी निचोड़ना पड़े। पूँजीपतियों के लगातार बढ़ते मुनाफ़े या मुट्ठीभर ऊपरी धनी तबक़े की ख़ुशहाली का कारण मज़दूरों का दिनोंदिन बढ़ता शोषण है। किसी मज़दूर के लिए यह समझना कठिन नहीं कि अपनी श्रमशक्ति का उपयोग करके वह केवल उतना मूल्य नहीं पैदा करता जितना मज़दूरी के रूप में उसे मिलता है। वह तो उसके द्वारा पैदा किये गये मूल्य का एक छोटा हिस्सा ही होता है। बाकी हिस्सा पूँजीपति हड़प कर जाता है जिसे न केवल वह अपनी विलासिता पर ख़र्च करता है बल्कि पूँजी संचय कर और अधिक मुनाफ़ा कमाता जाता है और मज़दूर दरिद्र से दरिद्रतर होता जाता है। मज़दूर के गुज़ारे के लिए ज़रूरी वस्तुओं की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी की तुलना में उसकी वास्तविक आय में बढ़ोत्तरी इतनी कम होती है कि उसे और उसके परिवार को आधे पेट सोने पर मजबूर होना पड़ता है। लेकिन सरकार सहित सारे पूँजीवादी अर्थशास्त्री और समूचा पूँजीवादी मीडिया इस बुनियादी सच्चाई पर पर्दा डालने के लिए आँकड़ों के फ़र्ज़ीवाड़े के साथ ही माँग और पूर्ति की व्यवस्था के असन्तुलन को महँगाई के लिए ज़िम्मेदार ठहराते हैं। मनमोहन सरकार के वित्तमन्त्री चिदम्बरम का यह बयान कौन भूल सकता है जिसमें उन्होंने कहा था कि महँगाई इसलिए बढ़ रही है क्योंकि लोग अब ज़्यादा खाने लगे हैं।

मगर यह झाँसापट्टी सदा-सर्वदा चलती ही रहेगी, ऐसा मानने वाले भारी भुलावे में जी रहे हैं। उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों से देश के भीतर अमीरी-ग़रीबी की जो खाई लगातार चौड़ी होती जा रही है, वह देश की समूची पूँजीवादी व्यवस्था को अन्त के और क़रीब लाती जा रही है। पूँजीवादी व्यवस्था के इसी संकट ने भारत सहित दुनिया भर में फासिस्ट शक्तियों को मज़बूती दी है। तमाम शिकायतों के बावजूद देश के बड़े पूँजीपति इसीलिए मोदी सरकार के पीछे खड़े हैं। मगर फ़ासीवाद पूँजीवाद को उसके विनाश से नहीं बचा सकता, बल्कि जनता पर बरपा होने वाले कहर को और भी बढ़ाकर संकट को और तीखा कर देता है। आज जितने बड़े पैमाने पर देश में औद्योगिक सर्वहारा वर्ग औद्योगिक महानगरों में इकट्ठा होता जा रहा है, वह ख़ुद पूँजीवादी व्यवस्था के लिए मौत का साजो-सामान बन रहा है। देश को आर्थिक महाशक्ति बनाने के नाम पर मेहनतकश अवाम के अन्धाधुन्ध शोषण के दम पर समृद्धि की जो मीनारें खड़ी हो रही हैं, उनके चारों ओर बारूद इकट्ठा होता जा रहा है। पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत इसे रोकने का कोई उपाय नहीं है। ''पूँजी संचय की प्रक्रिया न केवल पूँजीवाद के विनाश की परिस्थितियों, यानी सामाजिक आधार पर बड़े पैमाने के उत्पादन को तैयार करती है बल्कि पूँजीवाद की क़ब्र खोदने वाले को – सर्वहारा को भी जन्म देती है।'' पूँजी संचय की प्रक्रिया की इस ऐतिहासिक परिणति की ओर इशारा करते हुए मज़दूरों के शिक्षक और नेता कार्ल मार्क्स ने पूरे विश्वास के साथ घोषणा की थी : ''यह बम फटने वाला है, पूँजीवादी निजी स्वामित्व की घण्टी बजने वाली है। स्वत्वहरण करने वाले का स्वत्वहरण कर लिया जायेगा।''

''स्वत्वहरण करने वालों का स्वत्वहरण'' करना मज़दूर वर्ग का ऐतिहासिक मिशन है। पूँजीपति वर्ग और उसे अपना ज़मीर बेच चुके बुद्धिजीवियों द्वारा बोले जाने वाले तमाम झूठों में से एक यह है कि पूँजीपति मज़दूर को पालता है। इसके उल्टे सच यह है कि मज़दूर अपनी श्रमशक्ति से नया मूल्य पैदा कर पूँजीपतियों का न केवल पेट पालता है बल्कि उसकी पूँजी भी बढ़ाता है। साफ़ है कि पूँजीपति वर्ग और उसके तमाम लग्गू-भग्गू मज़दूरों की देह पर चिपकी ख़ून चूसने वाली जोंकों के समान हैं। इन जोंकों से छुटकारा पाना मज़दूर वर्ग का नैतिक कर्तव्य है। मज़दूर वर्ग के हरावलों को व्यापक मज़दूर आबादी के बीच जाकर उन्हें इस नैतिक कर्तव्य को निभाने के लिए तैयार करना होगा।

कौन हैं देविन्दर शर्मा और उनका "अर्थशास्त्र" और राजनीति किन वर्गों की सेवा करती है?

कोई भी संजीदा कम्युनिस्ट मौजूदा धनी किसान आन्दोलन की माँगों (मूलत: लाभकारी मूल्य की माँग) का समर्थन नहीं कर सकता है, क्योंकि पिछले कई दशकों के दौरान मार्क्सवादी और ग़ैर-मार्क्सवादी अध्येता यह दिखला चुके हैं कि लाभकारी मूल्य की पूरी व्यवस्था ग़रीब-विरोधी है और शुद्धत: धनी किसानों को राजकीय हस्तक्षेप द्वारा व्यापक मेहनतकश ग़रीब जनता की क़ीमत पर दिया जाने वाला बेशी मुनाफ़ा व लगान है। इस समय जारी धनी किसानों के आन्दोलन का समर्थन कर रहे अनेक मार्क्सवादियों को जब अपने पक्ष में कोई तर्क नहीं मिलता, तो वे देविन्दर शर्मा जैसों की शरण में पहुँच जाते हैं। काफ़ी लम्बे समय से देविन्दर शर्मा भारत में प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के बीच किसानों और खेती के सवाल के विशेषज्ञ बने हुए हैं। आइए देख लेते हैं कि इन देविन्दर शर्मा की राजनीति और "अर्थशास्त्र" क्या है।

– अभिनव सिन्हा

हमें आश्चर्य हुआ था जब हाल ही में हमने कुछ संजीदा मार्क्सवादी-लेनिनवादी बुद्धिजीवियों को मौजूदा किसान आन्दोलन और आज के भारत में किसान प्रश्न को समझने के लिए देविन्दर शर्मा जैसे "अर्थशास्त्रियों" को उद्धृत करते देखा। ताज्जुब की बात इसलिए थी कि कतिपय मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों ने कृषि प्रश्न व किसान प्रश्न को समझने के लिए मार्क्स, एंगेल्स, काउत्स्की और लेनिन की शिक्षाओं को समझने और उन्हें लागू करने की बजाय, स्वामी रामदेव के क़रीबी सहयोगी देविन्दर शर्मा में अपने "महान शिक्षक" और "लीडिंग लाइट" को देखना शुरू कर दिया था!

वैसे इसकी वजह भी समझी जा सकती है। असल में, मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षाओं की रोशनी में कोई भी संजीदा कम्युनिस्ट मौजूदा धनी किसान आन्दोलन की माँगों (मूलत: लाभकारी मूल्य की माँग) का समर्थन नहीं कर सकता है, क्योंकि पिछले कई दशकों के दौरान मार्क्सवादी और ग़ैर-मार्क्सवादी अध्येता यह दिखला चुके हैं कि लाभकारी मूल्य की पूरी व्यवस्था ग़रीब-विरोधी है और शुद्धत: धनी किसानों को राजकीय हस्तक्षेप द्वारा व्यापक मेहनतकश ग़रीब जनता की क़ीमत पर दिया जाने वाला एक बेशी मुनाफ़ा व लगान है।

ऐसे में, जो भी थोड़ा पढ़े-लिखे मार्क्सवादी बुद्धिजीवी हैं, वे मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षाओं की रोशनी में मौजूदा आन्दोलन के पक्ष में कोई तर्क, कोई तथ्य या कोई उद्धरण नहीं ढूँढ़ पाते हैं। लेकिन उनमें धारा के विरुद्ध तैरने का साहस भी नहीं है। उल्टे मोदी के फ़ासीवादी शासन के बरक्स वे इस क़दर पराजयबोध और हताशा के शिकार हैं कि जो कोई भी मोदी शासन को चुनौती देता है या चुनौती देता नज़र आता है, वे उसी के सिजदे और पायबोस करने लग जाते हैं! यह और कुछ नहीं वही वायरल संक्रमण है, जिसे एक मार्क्सवादी बुद्धिजीवी ने कुछ वर्ष पहले "लिबरल वायरस" का नाम दिया था। हमारे ये मार्क्सवादी-लेनिनवादी बुद्धिजीवी इसी लिबरल वायरस की गिरफ़्त में हैं और अपनी हताशा और पराजयबोध में धनी किसानों की गोद में जा बैठे हैं, इस आस में कि शायद ये धनी किसान ही मोदी सरकार को मज़ा चखा दें! और इस प्रक्रिया में वे भूल गये हैं कि ये धनी किसान ही आज पंजाब, हरियाणा और पूरे भारत के गाँवों में ग्रामीण पूँजीपति वर्ग की भूमिका में हैं, जो मुनाफ़े, लगान और सूद के ज़रिये गाँव के ग़रीब मेहनतकशों (यानी ग़रीब किसान व खेतिहर मज़दूर) को लूटते और निचोड़ते हैं, जिनके लाभकारी मूल्य के ज़रिये मुनाफ़ाख़ोरी की क़ीमत सारे देश की ग़रीब जनता चुकाती है, जो गाँवों में दलित मेहनतकश आबादी के मुख्य शोषक और उत्पीड़क हैं। मोदी सरकार से इनकी मुख़ालफ़त केवल एक आर्थिक माँग के प्रश्न पर है, यह कोई राजनीतिक विरोध नहीं है और यह इस आन्दोलन प्रक्रिया में कई बार दिख भी चुका है और आगे भी दिखेगा। जैसे ही लाभकारी मूल्य के प्रश्न पर किसी प्रकार का समझौता होता है, यह आन्दोलन समाप्त हो जायेगा।

जब ऐसे मार्क्सवादियों को मार्क्सवाद-लेनिनवाद में मौजूदा धनी किसान आन्दोलन का तर्कपोषण करने के लिए कुछ नहीं मिलता तो वे देविन्दर शर्मा जैसों की शरण में पहुँच जाते हैं। तो आइए देख लेते हैं कि इन देविन्दर शर्मा की राजनीति और "अर्थशास्त्र" क्या है।

देविन्दर शर्मा 'किसान एकता' नामक एक मंच के संस्थापक हैं और उनका दावा है कि उससे 65 किसान संगठन व यूनियनें जुड़े हुए हैं। शर्मा का दावा यह भी है कि कुल 40 करोड़ किसान व खेत मज़दूर उनके मंच से जुड़े हुए हैं! (वैसे भारत में कुल खेतिहर आबादी केवल 26 करोड़ के क़रीब है!)

किसान एकता मंच की प्रमुख माँग क्या है? इसकी प्रमुख माँग है स्वामीनाथन आयोग की सिफ़ारिश मानते हुए कृषि की व्यापक लागत के ऊपर 50 प्रतिशत का मुनाफ़ा सुनिश्चित करने वाला लाभकारी मूल्य दिया जाय। यह किसकी माँग है? इस पर हम पहले भी लिख चुके हैं, लेकिन एक बार संक्षेप में फिर तथ्यों व आँकड़ों के ज़रिये देख लेते हैं कि यह किस वर्ग की माँग है।

लाभकारी मूल्य व्यापक लागत के ऊपर दिया जाने वाला मुनाफ़ा है। यह मुनाफ़ा 40 से 50 फ़ीसदी के बीच रहता है। व्यापक लागत में सभी लागतें शामिल होती हैं जैसे मज़दूरी, लगान, ब्याज़, खाद व कीटनाशक, खेती के उत्पादन के साधन, सिंचाई, और यहाँ तक कि पारिवारिक श्रम भी, (हालाँकि बिरले ही धनी किसान परिवार के लोग खेतों में ख़ुद श्रम करते हैं), आदि।

दूसरी बात, **लाभकारी मूल्य का लाभ उसे ही मिल सकता है, जिसके पास बेचने योग्य पर्याप्त बेशी उत्पाद हो। भारत में 92 प्रतिशत किसान ग़रीब व सीमान्त किसान हैं, जिनके पास 2 हेक्टेयर से कम ज़मीन है। इन किसानों के पास आम तौर पर बेशी उत्पाद की कोई विचारणीय मात्रा होती ही नहीं है, या अगर होती भी है, तो उनकी लाभकारी मूल्य के पूरे तंत्र तक पहुँच ही नहीं होती है और यदि पहुँच होती भी है, तो वे साल भर में जितना अनाज बेचते हैं, उससे ज़्यादा ख़रीदते हैं, जिसके कारण लाभकारी मूल्य की व्यवस्था से उनको फ़ायदा नहीं बल्कि नुक़सान होता है।**

यह सच्चाई सभी जानते हैं, लेकिन इसके बारे में चुप हैं, क्योंकि उन्हें मौजूदा राजनीतिक बयार में बहते हुए धनी किसानों की पालकी का कहार बनना है। पंजाब में यह प्रतिशत पूरे भारत के औसत के मुक़ाबले कुछ ज़्यादा है क्योंकि वह 'हरित क्रान्ति' की मूल ज़मीन है, जिसका मक़सद पूँजीवादी फ़ार्मरों के एक वर्ग को पैदा करना था। वहाँ पर 2 हेक्टेयर से कम वाले किसान 34 प्रतिशत के क़रीब हैं और 4 हेक्टेयर से कम वाले किसान क़रीब 68 से 70 प्रतिशत हैं। ऐसे में, लाभकारी मूल्य का लाभ उठाने वाले धनी किसानों का प्रतिशत पंजाब में भारत के औसत के मुक़ाबले ज़्यादा है। लेकिन पंजाब में भी 25 से 30 प्रतिशत किसानों को ही लाभकारी मूल्य का नेट प्रॉफ़िट मिलता है। पूरे भारत का औसत यह है कि कुल किसान आबादी में से 6 प्रतिशत को ही लाभकारी मूल्य का नेट प्रॉफ़िट मिलता है। लेकिन पंजाब में भी कुल किसान आबादी में लाभकारी मूल्य का नेट प्रॉफ़िट प्राप्त करने वाली आबादी 25 से 30 प्रतिशत से ज़्यादा नहीं है।

तीसरी बात, जो लोग कहते हैं कि लाभकारी मूल्य की व्यवस्था के बिना सरकारी ख़रीद और सार्वजनिक वितरण प्रणाली ख़त्म हो जायेगी, वे भी बिल्कुल उल्टी बात करते हैं क्योंकि ऊँचे लाभकारी मूल्य के कारण वास्तव में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का नुक़सान होता है। वजह यह है कि लाभकारी मूल्य के कारण पंजाब और हरियाणा में एक मोनोकल्चर की व्यवस्था हावी हो गयी है और सरकारी ख़रीद की मौजूदा व्यवस्था के तहत जिस मात्रा में चावल व गेहूँ का उत्पादन होता है, वह देश की आबादी की आवश्यकता से कहीं ज़्यादा है। लाभकारी मूल्य के कारण अनाज की क़ीमतें वैश्विक क़ीमतों से ज़्यादा होने के कारण उनका निर्यात भी नहीं हो पाता है। और क़ीमतें ज़्यादा होने के कारण ही सरकारी ख़रीद के तहत जो अनाज ख़रीदा जाता है, उसे सरकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत रियायती दरों पर वितरित करने की बजाय, सड़ा देना और कम्पनियों को बेच देना पसन्द करती है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली लाभकारी मूल्य की व्यवस्था के पहले भी मौजूद थी और उसके बाद भी मौजूद रह सकती है, उसका लाभकारी मूल्य से कोई कारणात्मक सम्बन्ध नहीं है। अगर कोई कारणात्मक सम्बन्ध है, तो वह व्युत्क्रमानुपाती है, समानुपातिक नहीं है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सरकार अलग कारणों से 1992 से ही नष्ट कर रही है। लेकिन 1992 से 2019 के बीच लाभकारी मूल्य की व्यवस्था को न सिर्फ़ क़ायम रखा गया है, बल्कि उसे और बढ़ाया गया है। सरकारी ख़रीद में भी बढ़ोत्तरी हुई है। अगर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के साथ इसका कोई कारणात्मक सम्बन्ध होता तो इस दौर में सार्वजनिक वितरण प्रणाली और सुदृढ़ और विस्तारित होती। सच यह है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली को पंगु बनाना और उसे समाप्त करना शासक वर्गों का एक अलग एजेण्डा है, जिसके ख़िलाफ़ अलग से लड़ने की आवश्यकता है। इस लड़ाई को धनी किसानों की लाभकारी मूल्य की माँग से जोड़ना न सिर्फ़ ग़लत और नुक़सानदेह है बल्कि मूर्खतापूर्ण भी है।

लाभकारी मूल्य के कारण खाद्यान्न की बाज़ार क़ीमतों के लिए भी एक ऊँचा सन्दर्भ बिन्दु निर्धारित होता है और खाद्यान्न की महँगाई बढ़ती है जो पूरी मेहनतकश-ग़रीब आबादी को नुक्सान पहुँचाती है। यह भी मार्क्सवादी और ग़ैर-मार्क्सवादी अध्येताओं द्वारा स्थापित एक ऐसा तथ्य है, जिस पर सन्देह करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। हम इसी श्रृंखला की पिछली कड़ियों में और मैंने अपनी वॉल पर इस बारे में कई लेख लिखे हैं, जिन्हें दिलचस्पी रखने वाले पाठक पढ़ सकते हैं। ऐसे में, लाभकारी मूल्य की पूरी माँग गाँव के 6 प्रतिशत धनी किसानों के मुनाफ़े की ख़ातिर व्यापक मेहनतकश जनता को लूटने की माँग है। इसकी वजह से न सिर्फ़ व्यापक मेहनतकश जनता की वास्तविक आय और जीवन स्तर नीचे जाता है, बल्कि उनका पोषण स्तर भी नीचे जाता है, क्योंकि खाद्यान्न पर पहले के मुक़ाबले ज़्यादा ख़र्च करने के बावजूद वे पहले से कम भोजन उपभोग कर पाते हैं और साथ ही अन्य वस्तुओं व सेवाओं का उनका उपभोग भी घटता है, क्योंकि उनकी आय का पहले से ज़्यादा बड़ा हिस्सा भोजन पर ख़र्च होता है। यह सब बातें स्थापित तथ्य हैं और सभी संजीदा विश्लेषक व अध्येता इससे वाक़िफ़ हैं। लेकिन इस पर भी वामपन्थी टीकाकारों तक ने साज़िशाना चुप्पी साध रखी है, क्योंकि मौजूदा धनी किसान आन्दोलन के बारे में कोई आलोचनात्मक विश्लेषण रखने का साहस वे नहीं जुटा पा रहे हैं। नतीजतन, वे देविन्दर शर्मा जैसे बौद्धिक नीम-हकीमों व बाबा रामदेव के क़रीबी सहयोगी की शरण में जा रहे हैं!

इन नीम-हकीमों का यह दावा कि भारत और यहाँ तक कि पंजाब और हरियाणा में कोई धनी किसान नहीं है, एक हास्यास्पद गप्प है। समूची किसान आबादी की औसत आय को रुपये 6800 प्रति माह के क़रीब दिखाकर ये मूर्ख पूछते हैं कि "कहाँ है धनी किसान?" ऐसे किसी भी औसत आँकड़े को आधार बनाया जाय तो भारत के नागरिकों की प्रति व्यक्ति आय रुपये 11000 प्रति माह दिखाकर पूछा जा सकता है कि "कहाँ है भारत में पूँजीपति, कहाँ है अम्बानी, अडानी, टाटा, वग़ैरह?" छठी कक्षा का छात्र भी जानता है कि औसत का क्या अर्थ होता है और ऐसे कुतर्क उसे भी मूर्ख नहीं बना सकते हैं। लेकिन कई मार्क्सवादी-लेनिनवादी भी धनी किसान आन्दोलन की आँधी में तिनका बन कर बहने के लिए ऐसे कुतर्कों का सहारा लेते हैं और बाबा रामदेव के भक्त देविन्दर शर्मा की शरण में पहुँच जाते हैं! थोड़ा शर्मनाक लगता है!

साथ ही, एक और दावा करके देविन्दर शर्मा जैसे लोग हमारे इन असावधान और मासूम मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों को बहा ले जाते हैं: पंजाब के 80 प्रतिशत से ज़्यादा किसानों पर क़र्ज़ है! हम पिछली किश्त में दिखला चुके हैं कि 4 हेक्टेयर से अधिक जोत के किसान जो कि पूँजीवादी खेती करते हैं, उजरती श्रम का शोषण करके मुनाफ़ा करते हैं, कमीशनख़ोरी, सूदख़ोरी करके मुनाफ़ा कमाते हैं, वे भी पूँजीवादी निवेश करने के लिए ऋण लेते हैं। हर पूँजीपति निवेश के लिए ऋण लेता है। इस ऋण और उस ऋण में फ़र्क़ किया जाना चाहिए जो कि 2 हेक्टेयर से कम जोत वाला किसान अपनी खेती के लिए चालू पूँजी हेतु लेता है या अपने निजी ख़र्च जैसे कि शादी, वग़ैरह के लिए लेता है। यह भी आँकड़ों की

(पेज 10 पर जारी)

कौन हैं देविन्दर शर्मा और उनका "अर्थशास्त्र" और राजनीति किन वर्गों की सेवा करती है?

(पेज 9 से आगे)

घटिया क़िस्म की बाजीगरी है, जो कि एक आम मेहनतकश नागरिक और अम्बानी को एक क़तार में लाकर खड़ा कर देती है। निवेश ऋण और गुज़ारे या निजी ख़र्च के लिए मजबूरी में लिये गये क़र्ज़ में अन्तर किये बग़ैर एक एग्रीगेट एवरेज बताना और फिर धनी किसानों को बेचारा बताना उसी प्रकार की घटियाई है, जिस प्रकार की घटियाई बुर्जुआ क़ौमवादी दृष्टिकोण से कई अर्थशास्त्री करते हैं और दिखलाते हैं कि पूरा भारत ऋणी है, पूरे भारत का एक राष्ट्रीय हित है, वग़ैरह।

ये ही सारे तर्क देविन्दर शर्मा भी देता है और ठीक उसी प्रकार लोगों को मूर्ख बनाता है, जिस प्रकार बाबा रामदेव पतंजलि की दवाओं से जनता को मूर्ख बनाता है। लेकिन मूर्ख बनने के लिए आतुर लोगों की क़तार में कई मार्क्सवादी-लेनिनवादी भी जाकर खड़े हैं, जिन्होंने कृषि प्रश्न पर मार्क्स, एंगेल्स, काउत्स्की (जब तक वे मार्क्सवादी थे) और लेनिन की शिक्षाओं को सुविधाजनक रूप से भूल जाने और बाबा रामदेव व उनके सहयोगी देविन्दर शर्मा की पूँछ पकड़ लेने का रास्ता चुना है।

देविन्दर शर्मा बाबा रामदेव के बारे में क्या कहते हैं यह भी सुन लीजिए: "मेरे लिए – और उनके (बाबा रामदेव के लिए) भी – कृषि का जीर्णोद्धार करना और जनता का सशक्तीकरण करना सच्चे आर्थिक विकास, वृद्धि और प्रसन्नता की कुंजी है। इसलिए उनमें (बाबा रामदेव में) मैं इस सन्देश को बढ़ाने वाले एक व्यक्ति को देखता हूँ जो स्पष्ट शब्दों में और ऊँचे स्वर में इस सन्देश को लोगों तक पहुँचा सकता है। उनके अन्दर यह दिखलाने की शक्ति है कि एक और भारत सम्भव है। वह व्यावहारिक विकल्प उपलब्ध कराने में सहायता करने के लिए आतुर हैं।"

यह हैं वह महानुभाव जिनके शिष्य बनने के लिए मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों में भी होड़ लग गयी है! सच्चाई यह है कि देविन्दर शर्मा धनी किसान व कुलक हितों की सेवा करने वाला एक दक्षिणपन्थी "बौद्धिक" है, जिसके "अर्थशास्त्र" और राजनीति की कलई उसके किसान एकता मंच की माँगों और इन महोदय के साक्षात्कार सुनते ही खुल जाती है।

आँकड़ों का एक सटीक विश्लेषण करने की बुनियादी तमीज़ भी जिस अर्थशास्त्री में न हो, क्या उसके पास अपने आपको अर्थशास्त्री कहने का कोई नैतिक अधिकार है? जो किसान आबादी के विभेदीकरण और धनी किसानों-कुलकों द्वारा ग़रीब किसानों व खेतिहर मज़दूरों के शोषण को छिपाने के लिए समूची किसान आबादी की औसत मासिक आय दिखाकर पूछता हो कि भारत में धनी किसान कहाँ है, क्या ऐसे व्यक्ति को गम्भीरता से लिया जा सकता है? जो 80 प्रतिशत किसानों के क़र्ज़ में होने को दिखलाकर पूछता हो कि ऐसे में धनी किसान का वजूद कैसे सम्भव है, क्या उसकी नीयत को साफ़ माना जा सकता है? गाँवों में किसानों का विभेदीकरण एक ऐसी नंगी सच्चाई है, जिसे छिपाना सम्भव ही नहीं है। 2011 की जनगणना में खेतिहर मज़दूरों की तादाद किसानों की तादाद से ज़्यादा कैसे हो गयी? 92 प्रतिशत किसानों के पास 2 हेक्टेयर से कम ज़मीन होना और 2-3 प्रतिशत किसानों के पास 4 हेक्टेयर से अधिक ज़मीन होने का क्या अर्थ है? क्या कारण है कि पंजाब तक में 2019 में आत्महत्या करने वाले 3330 किसानों में से 94 प्रतिशत 2 हेक्टेयर से कम ज़मीन वाले थे? क्या वजह है कि भारत में 92 प्रतिशत छोटे व सीमान्त किसानों की आय का 60 प्रतिशत से ज़्यादा हिस्सा खेती से नहीं बल्कि उजरती श्रम से आता है? और क्या कारण है कि ऊपर के 5 प्रतिशत किसानों की आय का 80 प्रतिशत से ज़्यादा हिस्सा खेती और अन्य भी सूदख़ोरी व कमीशनख़ोरी से आता है? ये दोनों क्या किसान आबादी के दो अलग-अलग वर्ग नहीं हैं? और क्या सच नहीं है कि इनमें से बाद वाला, यानी ऊपर के 5 प्रतिशत, नीचे के 92 प्रतिशत का शोषण करके ही अमीर और समृद्ध बने हैं?

ऐसे नक़ली "अर्थशास्त्री" गाँवों को जानने का दावा करते हैं, लेकिन ये गाँवों के धनी किसानों-कुलकों के हितों की सेवा करने के लिए आँकड़ों के साथ दुराचार करके झूठ की ऐसी आँधी चलाते हैं जिसमें अध्ययन की कमी या अपने लोकरंजकतावाद और मौक़ापरस्ती के कारण कई मार्क्सवादी-लेनिनवादी भी बह जाते हैं और बेशर्मी के साथ देविन्दर शर्मा जैसे लोगों के इण्टरव्यू सुन-सुनकर और उसे उद्धृत करते हुए फ़ेसबुक पोस्टें लिखने लगते हैं! मार्क्सवाद की बुनियादी शिक्षाओं को भूलते हुए, और कुलकवादी और दक्षिणपन्थी "बौद्धिक" देविन्दर शर्मा सरीखों को उद्धृत करते हुए पूछते हैं कि भारत में कहाँ है धनी किसान? ऐसे लोगों का या तो गाँव से कोई राबता नहीं है, या बचपन में ही टूट गया था, या फिर वे अपनी मौक़ापरस्ती में उस झूठ की पूँछ पकड़े भिनभिनाते हुए घिसट रहे हैं, जो देविन्दर शर्मा जैसे लोग फैला रहे हैं।

संजीदा मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों को इस प्रश्न पर सोचना चाहिए और साहस के साथ वैज्ञानिक मार्क्सवादी अवस्थिति को अपनाना चाहिए, चाहे इसके लिए उन्हें धारा के विरुद्ध ही क्यों न तैरना पड़े। और ऐसे बुद्धिजीवियों के समक्ष यह अपील हम विशेष तौर पर रखेंगे कि देविन्दर शर्मा जैसों का अनुसरण करने से पहले कृषि प्रश्न और किसान प्रश्न की एक सही व सन्तुलित मार्क्सवादी समझदारी बनाने के लिए मार्क्स ('पूँजी' खण्ड-3 में भूमि लगान पर आधारित अध्याय), एंगेल्स ('फ्रांस और जर्मनी में किसान प्रश्न'), काउत्स्की (दो खण्डों में 'कृषि प्रश्न' नामक काउत्स्की की प्रसिद्ध पुस्तक), लेनिन ('गाँव के ग़रीबों से', 'पूँजीवाद और खेती', 'रूस में पूँजीवाद का विकास', 'ए कैरेक्टराइज़ेशन ऑफ़ इकोनॉमिक रोमाण्टिसिज़्म', और अन्य कई रचनाएँ!) को पढ़ना चाहिए। हमें पूरा यक़ीन है कि उसके बाद देविन्दर शर्मा सरीखों को उद्धृत करने में भी उन्हें अवश्य ही शर्म आयेगी, जो कि आँकड़ों के साथ दुराचार कर धनी किसान-कुलक वर्ग के शोषण और उत्पीड़न पर पर्दा डालने का काम करते हैं।

अगली कड़ी में एक अन्य सुधारवादी, संशोधनवादी बुद्धिजीवी पी. साईनाथ के किसान प्रश्न पर चिन्तन और आँकड़ों के साथ की जाने वाली हेराफेरी के बारे में थोड़ी पड़ताल करेंगे और दिखलायेंगे कि उपरोक्त क़िस्म के मार्क्सवादियों-लेनिनवादियों के लिए किस प्रकार वे दूसरी "अथॉरिटी" और "लीडिंग लाइट" बने हुए हैं।

मज़दूर आन्दोलन में नौसिखियापन और जुझारू अर्थवाद की प्रवृत्ति से लड़ना होगा

(पेज 7 से आगे)

जिनसे उसे पैसे भी मिल जाते हैं और जिनमें से "समिति" युवाओं के नये दल भर्ती कर लेती है। समिति की (या संघर्ष करने वाली लीग की) आकर्षण शक्ति बढ़ जाती है,उसका कार्य क्षेत्र विस्तृत हो जाता है और उसका काम बिलकुल स्वयंस्फूर्त ढंग से फैल जाता है। वे ही लोग, जो एक साल या चन्द महीने पहले छात्र मण्डल की सभाओं में बोला करते थे... जिन्होंने मजदूरों के साथ सम्पर्क कायम किया था ... प्रदर्शन संगठित करने की बातें करने लगते हैं और अन्त में खुली जंग शुरू कर देते हैं (यह खुली जंग परिस्थितियों के अनुसार कई रूप ले सकती है, जैसे पहले आन्दोलनात्मक पर्चे का प्रकाशन, या पत्र के पहले अंक का निकलना, या पहले प्रदर्शन का संगठित किया जाना।) और आम तौर पर पहली कार्रवाई ही फ़ौरन पूरी तरह असफल हो जाती है। फ़ौरन और पूरी तरह इसलिए कि यह खुली जंग एक लम्बे और दृढ़ संघर्ष की किसी सुव्यवस्थित और अच्छी तरह से सोच-विचार कर बनायी गयी और क़दम-ब-क़दम तैयार की गयी योजना का परिणाम नहीं थी, बल्कि वह केवल मण्डलों के परम्परागत काम के स्वयंस्फूर्त विकास का परिणाम थी; कारण कि लगभग हर जगह पुलिस स्वभावतया स्थानीय आन्दोलन के मुख्य नेताओं को जानती थी, क्योंकि उन्होंने अपने स्कूली ज़माने में ही "नाम कमा लिया था" और पुलिस सिर्फ़ इस इन्तज़ार में रहती थी कि उचित अवसर आये तो छापा मारे। ...पुलिस ने "हर तरह के अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित अपने खुफ़िया एजेंटों, गुप्तचरों और राजनीतिक पुलिस वालों के दस्ते जगह-जगह तैनात कर दिया। नित नयी जगहों पर छापे मारे जाने लगे, उनकी लपेट में इतने अधिक लोग आये और स्थानीय मण्डलों का इस बुरी तरह सफ़ाया हुआ कि आम मज़दूरों से उनका एक-एक नेता छिन गया। आन्दोलन ने इतना असंगठित और इतना अविश्वसनीय रूप से छुटपुट रूप धारण किया कि काम में क्रम और तालमेल बनाये रखना बिलकुल असम्भव हो गया था। स्थानीय नेताओं का बुरी तरह इधर-उधर बिखरे रहना, मंडलों का सांयोगिक गठन, सैद्धान्तिक, राजनीतिक तथा संगठनात्मक प्रश्नों के सम्बन्ध में प्रशिक्षण का अभाव और संकुचित दृष्टिकोण – ये तमाम बातें इन परिस्थितियों का लाज़िमी कारण थीं जिनका हमने ऊपर वर्णन किया है।''

नौसिखियापन के बारे में जो उदाहरण लेनिन लाक्षणिक छात्र मण्डल के बारे में देते हैं वह 'मज़दूर अधिकार संगठन' के ऊपर भी लागू होता है। लेनिन के अनुसार यह सांगठनिक नौसिखियापन राजनीति में अर्थवाद की ही उपज होता है। लेनिन के अनुसार "नौसिखियापन अर्थवाद से सम्बन्धित है, और जब तक हम अर्थवाद को आम तौर पर (अर्थात मार्क्सवादी सिद्धान्त की, सामाजिक जनवादी संगठन की भूमिका की और उसके राजनीतिक कार्यों की संकुचित धारणा को) दूर नहीं करते, तब तक हम संगठनात्मक कार्य की संकीर्णता को दूर नहीं कर सकेंगे। ये कोशिशें दो तरह से प्रकट हुई हैं। कुछ लोग यह कहने लगे: अभी तक आम मज़दूरों ने उन व्यापक तथा जुझारू राजनीतिक कार्यभारों को ख़ुद पेश नहीं किया है, जिनको क्रान्तिकारी लोग उनपर "लादने" की कोशिश कर रहे हैं, फिलहाल मज़दूरों को **तात्कालिक** राजनीतिक माँगों के लिए लड़ते जाना चाहिए, उन्हें "मालिकों तथा सरकार के ख़िलाफ़ आर्थिक संघर्ष" जारी रखना चाहिए (और सम्भवत: जनआन्दोलन की "आसानी से समझ में आ जाने वाली" इस समझ के अनुरूप ऐसा संगठन भी होना चाहिए जिसे एकदम अप्रशिक्षित नौजवान भी "आसानी से समझ सकें")। दूसरे लोग जो धीरे-धीरे चलने से कोसों दूर रहते हैं यह कहने लगे: "राजनीतिक क्रान्ति करना" सम्भव और आवश्यक है, परन्तु उसके लिए सर्वहारा को दृढ़ और अटल संघर्ष की प्रशिक्षा देने वाला क्रान्तिकारियों का कोई मज़बूत संगठन बनाने की ज़रूरत नहीं है। ज़रूरी बस इतना है कि अपनी पुरानी परिचित "सहज प्राप्य" लाठी उठाओ और बढ़ चलो। रूपक के फेर में न पड़कर यदि हम अपनी बात सीधे-सीधे कहें, तो इसका मतलब यह है कि हमें आम हड़ताल का संगठन करना चाहिए, अथवा "उत्तेजना पैदा करने वाले आतंकवादी कार्यों" के ज़रिए मज़दूर आन्दोलन की "आत्माविहीन" प्रगति को बढ़ावा देना चाहिए। ये दोनों ही प्रवृत्तियाँ, अवसरवादी और "क्रान्तिवादी", प्रचलित नौसिखुएपन के आगे शीश नवा रही हैं, दोनों में से कोई भी यह नहीं मानती कि इस नौसिखुएपन को दूर किया जा सकता है, दोनों में से कोई भी यह नहीं समझती कि हमारा प्राथमिक तथा सबसे आवश्यक व्यवहारिक कार्यभार क्रान्तिकारियों का एक ऐसा संगठन खड़ा करना है जो राजनीतिक संघर्ष की शक्ति, उसके स्थायित्व और उसके अविराम क्रम को कायम रख सके।"

'मज़दूर अधिकार संगठन' की राजनीति में हावी जुझारू अर्थवाद और "क्रान्तिकारी" प्रवृत्ति व उनका सांगठनिक नौसिखुआपन उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है।

आज भारत में मज़दूर आन्दोलन देश स्तर पर बिखराव का शिकार है। क्रान्ति की शक्तियों पर प्रतिक्रान्ति की शक्तियाँ हावी हैं। इसके बावजूद मज़दूरों के संघर्ष अविराम जारी हैं। परन्तु तमाम विजातीय प्रवृत्तियों का समय-समय पर मज़दूर आन्दोलन में उभार होता है जिसके चलते आन्दोलन बिखरता रहता है। सीटू, एटक और एक्टू के अवसरवाद की संगठित क्षेत्र के मज़दूरों में पकड़ है तो साथ ही मज़दूर आन्दोलन में नवसंशोधनवाद, अराजकतावादी संघाधिपत्यवाद और दुस्साहसवाद की विजातीय प्रवृत्तियाँ भी पैदा होती रही हैं। इन सभी राजनीतिक प्रवृत्तियों की जड़ में अर्थवाद ही है। यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जिससे मज़दूर आन्दोलन को निजात दिलाने हेतु राजनीतिक संघर्ष चलाना चाहिए। मज़दूर आन्दोलन में स्वत:स्फूर्तवाद के पुजारी इतिहास में अपने आप विलीन हो जाते हैं परन्तु इस प्रवृत्ति को हमें सचेतन कुचल देना चाहिए और कहीं भी इसे जमने नहीं देना चाहिए। नौदीप कौर और शिवकुमार की हिम्मत को सलाम और उनकी रिहाई की लड़ाई लड़ते हुए व उनके जनवादी अधिकारों का समर्थन करते हुए भी हम उनके संगठन के राजनीतिक विचलन से संघर्ष चलाने को बाध्य हैं।

फ़ूड डिलीवरी कम्पनियों में कर्मचारियों के हालात

लॉकडाउन में स्विगी, ज़ोमैटो आदि की बेहिसाब कमाई की क़ीमत वर्कर चुका रहे हैं अपनी छँटनी और लूट से

– अनुपम

कोरोना लॉकडाउन के दौरान फ़ूड डिलीवरी कम्पनियों ने जमकर मुनाफ़ा कमाया। महामारी के दौरान घरों में बन्द लोगों को खाने-पीने की चीज़ें पहुँचाने के काम पर सरकार द्वारा रोक नहीं लगायी गयी थी इसलिए अपनी रोज़ी कमाते रहने के लिए अप्रैल-मई की चिलचिलाती धूप में भी फ़ूड डिलीवरी कर्मचारी कोरोना महामारी के साये में यह काम करते रहे। सरकार और कम्पनी दोनों की तरफ़ से ही उनके इस कठिन काम की तारीफ़ की जाती रही। मोदी ने उन्हें 'फ्रण्टलाइन वर्कर' कहा तो वहीं कम्पनियों ने उन्हें 'हीरो' कहा।

बेशक डिलीवरी ब्वॉय जो कर रहे थे, उसकी काफ़ी अहमियत थी। लेकिन डिलीवरी वर्करों की तारीफ़ के पुल बाँधने वाली कम्पनियों और सरकार ने उन्हें इस मेहनत बदले में बेरोज़गारी और शोषण के अलावा कुछ नहीं दिया। संकट के दौरान जहाँ एक ओर स्विगी (फ़ूड डिलीवरी की दैत्याकार कम्पनियों में से एक) ने फ़्लीट मैनेजर तक के पद ख़त्म कर दिये वहीं डिलीवरी वर्कर्स की तनख़्वाह में क़रीब 60 प्रतिशत तक की कटौती कर दी। दूसरी दैत्याकार कम्पनी, ज़ोमेटो का भी ऐसा ही यही हाल रहा।

कई डिलीवरी वर्कर बताते हैं कि उन्होंने लॉकडाउन के दौरान कोरोना का ख़तरा उठाते हुए कोरोना प्रभावित अस्पतालों के अन्दर तक जाकर भी ऑर्डर पहुँचाये। काम के दौरान पुलिस द्वारा एक बार उनकी बाइक भी ज़ब्त कर ली गयी थी और तब उन्होंने उसे छुड़वाने के लिए ख़ुद अपनी जेब से 2,000 रुपये ख़र्च किये थे। कम्पनी प्रशासन ने उनकी कोई मदद नहीं की। पहले तो कम्पनी का कोई कर्मचारी उनकी शिकायत सुनता था लेकिन अब उसकी कॉल सेंटर बना दिया गया, जिस पर फ़ोन का या तो जवाब ही नहीं मिलता या फिर गोलमोल जवाब दिये जाते हैं। बार-बार शिकायत करो तो उल्टा नौकरी से निकालने की धमकी दी जाती है।

ऑनलाइन न्यूज़पोर्टल, द वायर में छपी एक रिपोर्ट से हमें ऐसे कई वर्कर्स के बारे में पता चला जिन्हें लॉकडाउन के दौरान विभिन्न कारणों से निकाल बाहर किया गया और जो बचे, उनकी तनख़्वाह में कटौती कर दी गयी। कम्पनी के इस रवैये के विरोध में हड़तालें भी हुईं, लेकिन कम्पनी ने हड़तालों को छल और बल से दबा दिया और बहुत से लोगों को निकाल दिया।

एक डिलीवरी वर्कर राज ने बताया कि जब उसने स्विगी कम्पनी ज्वाइन की थी तो उसने काम की कठिनाइयों की बिल्कुल भी परवाह नहीं की थी। जब वह पन्द्रह वर्ष का था तभी उसके पिताजी विकलांग हो गये थे। नतीजतन, उसने कम उम्र में ही रोज़ी-रोटी के लिए काम करना शुरू कर दिया था। शुरू-शुरू में दुकानों और फ़ैक्टरियों में काम करने के बाद वह 2018 में स्विगी के लाँच होते ही उसके लिए काम करने लगा, क्योंकि उसे उम्मीद थी कि वह यहाँ कमरतोड़ मेहनत के बावजूद भी ज़्यादा कमा सकेगा। शुरू के दो सालों तक ऐसा ही हुआ लेकिन उसके बाद फ़रवरी 2020 के बाद मार्च से स्थितियाँ बिल्कुल ही बदल गयीं।

मार्च में लॉकडाउन के दौरान भी उसे ऑर्डर आते रहे, लेकिन शहर के कुछ हिस्सों में कण्टेन्मेण्ट ज़ोन बन जाने के चलते वह कई ऑर्डर डिलीवर ही नहीं कर पाया। इसका बहाना लेकर कम्पनी ने बिना किसी सुनवाई के उसकी आईडी ब्लॉक कर दी। काफ़ी मशक़्क़त करने पर उसकी आईडी पूरे 25 दिनों के बाद फिर से चालू की गयी। तब तक उसके ऊपर कई सारे क़र्ज़ों का बोझ बढ़ चुका था। उन्हें चुका पाने के लिए स्विगी में मिलने वाला वेतन इस बार काफ़ी कम था। लाचार होकर राज ने स्विगी के अलावा ऐमाज़ॉन कम्पनी के लिए भी काम करना शुरू कर दिया। इन दिनों वह ऐमाज़ॉन के लिए सुबह 6 बजे से दोपहर के 2 बजे तक काम करता है और फिर उसके बाद शाम 6 बजे से आधी रात तक दूसरी शिफ़्ट में स्विगी के लिए खटता है।

पहले से दोगुनी मेहनत करके भी बद से बदतर ज़िन्दगी बिता रहा राज अब अपने काम में कोई भविष्य नहीं देखता और निराश होकर दूसरे कामों को इससे बेहतर बताता है। लेकिन बेरोज़गार होने के डर से वह मजबूरन जैसे-तैसे यही काम करके अपना और अपने परिवार का ख़र्चा चला रहा है।

निखिल नाम के एक फ़्लीट मैनेजर को भी स्विगी कम्पनी ने निकाल बाहर किया। यह छँटनी कोरोना महामारी के कारण नहीं बल्कि कम्पनी की पहले से तय योजना का एक हिस्सा थी। कम्पनी ने पहले से ही तय कर रखा था कि वह फ़्लीट मैनेजरों को हटाकर उनकी जगह एक नया सिस्टम "रिमोट ऑपरेशन्स कण्ट्रोल" लाँच करेगी, जिसमें एक केन्द्रीय कॉल सेण्टर होगा और बाक़ी सारा काम कम्प्यूटराइज़्ड होगा। निखिल के अनुसार, उसको और उसके 53 सहकर्मियों को ऐसी कुछ बातों की नवम्बर 2019 में ही भनक लग गयी थी।

निखिल ने बताया कि उसने कम्पनी के लिए पूरे पाँच साल तक प्रतिदिन 9-10 घण्टे काम किया। रोज़ ही 250 से लेकर 350 तक कॉलें उसके पास आती थीं। उसका काम था कि वह डिलीवरी वर्कर्स के काम पर नज़र रखे और किसी दुर्घटना की स्थिति में उन तक मदद पहुँचाने का काम करे। यह काम वह 11 सहायकों के साथ मिलकर करता था। लेकिन कम्पनी की नयी नीति ने उन सबसे उनकी नौकरी छीन ली।

फ़्लीट मैनेजर को हटाकर कम्पनी ने किस तरह अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ा, इसके बहुत सारे उदाहरण वर्कर्स ने ख़ुद अपने अनुभव के आधार पर बताये। जैसे कि साहिल ने बताया कि सितम्बर में उसे किसी ग्राहक ने एक ऑर्डर दिया था, जिसे लेने के वक़्त उसे पता चला कि वह ऑर्डर रेस्टोरेण्ट में तैयार नहीं है। ऐसे वक़्त में ग्राहक द्वारा बार-बार कॉल किये जाने पर उसे फ़्लीट मैनेजर की ज़रूरत महसूस हुई, लेकिन डेढ़ घण्टे तक उसे नये सिस्टम से कोई सहायता नहीं मिली। अन्ततः ऑर्डर तो रद्द हो गया और साथ ही में उसके खाते से दस रुपये भी काट लिये गये। नये सिस्टम का डिलीवरी वर्करों के साथ सम्बन्ध कितना दोस्ताना है, यह इसी से पता लगता है कि वे समय पर किसी काम नहीं आते।

वहीं, दूसरी ओर कर्मचारियों की शिकायतें सुनने के लिए मार्च 2020 में जो तरीक़ा लागू किया गया, उसकी कई सारी ख़ामियों ने वर्कर्स की एक बड़ी संख्या को चुपचाप रहने के लिए मजबूर कर दिया। पहली बात कि फ़ॉर्म की भाषा भी अंग्रेज़ी रखी गयी, दूसरी यह कि लिखित में होने के चलते वर्कर्स और कम्पनी के बीच संवाद सरल नहीं रह गया। सूरत में काम करने वाले डिलीवरी वर्कर इरशाद बताते हैं कि अगर उन्हें अपने रूट को किसी वजह से बदलना पड़े, तो कम्पनी उनके पास चेतावनी भरे नोटिस भेजती है। इसके बुरे असर (कमीशन में कटौती और छँटनी) से बचने के लिए उनके पास एक ही चारा होता है कि वह कम्पनी का गूगल फ़ॉर्म भरकर कम्पनी को सूचित करें। इसी काम में उनके हफ़्ते के आख़िरी दिन का काफ़ी हिस्सा बर्बाद हो जाता है।

अप्रैल के महीने में डिलीवरी के लिए बाइक चलाते वक़्त स्विगी कर्मचारी इरशाद का एक्सीडेण्ट हो गया और उसके बाँये हाथ में चोट लग गयी। दर्द होने के बावजूद वह ऑर्डर डिलीवर करके ही अस्पताल गया। जब उसे पता चला कि उसे मोच आयी है तो वह अपने दोस्त की मदद से कम्पनी के हब में गया। उसे कम्पनी ने 2018 में यह वादा किया था कि वह चोट वग़ैरह लगने की स्थिति में उसे सवेतन अवकाश देगी, लेकिन हब में जाने पर उसे बताया गया कि कम्पनी केवल कोरोना पीड़ितों को ही सवेतन छुट्टी दे रही है, इसलिए उसे यह सुविधा नहीं दी जायेगी।

छुट्टी की सुविधा देने वाली स्कीम 'स्विगी स्माइल' कर्मचारियों को उनके काम की स्पीड और क्वालिटी को ध्यान में रखकर उन्हें कुछ ही दिन छुट्टी लेने का मौक़ा देती थी। 2020 में उसे भी बन्द कर दिया गया और यह नियम लाया गया कि अगर वे ज़्यादा समय तक स्विगी के ऐप पर लॉग ऑफ़ रहते हैं तो उनकी आईडी ब्लॉक कर दी जायेगी। इसके ज़रिये भी बड़ी तादाद में वर्कर्स बाहर निकाले गये।

स्विगी टेक्नोलॉजी के इस इस्तेमाल को अपने स्तर के कारोबार की एक ज़रूरत बताता है। वह बताता है कि अब उनके काम को सम्भालना इन्सानों के बस की बात नहीं है, इसलिए ही उसकी जगह पर टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल किया गया है। जबकि सच्चाई यह है कि स्विगी को बाज़ार में स्थापित करने में डिलीवरी वर्करों, फ़्लीट मैनेजरों और अन्य कर्मचारियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। 2019 से स्विगी का फैलाव अगर देश के 500 शहरों में हो सका, तो इसलिए कि स्विगी के लिए काम करने वाले कर्मचारियों ने दिन-रात सख़्त मेहनत की है। वहीं, दूसरी तरफ़ कम्पनी के अनुसन्धान करने वाले विभाग का अध्यक्ष ख़ुद ही अपनी मीटिंगों में कर्मचारियों को मशीन और उनके डाटा को अपने स्टार्टअप का ईंधन बताता है। यानी कि यह सब कुछ मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए किया गया है न कि किसी मजबूरी में।

नये मानवविहीन स्वचालित तंत्र द्वारा कम्पनी ने जो व्यवस्था क़ायम की है, वह वर्कर्स में आतंक पैदा करती है। कम्पनी द्वारा इस नये ऑटोमेशन के ज़रिये कर्मचारी की हर गतिविधि बारीकी से रिकॉर्ड की जाती है। वर्कर जहाँ भी जाता है, वहाँ उसे अपनी मौजूदगी दर्ज कराने के लिए अपनी सेल्फ़ी अपलोड करनी होती है। यह भी देखा जाता है कि उसने अपनी पोशाक ठीक से पहनी है कि नहीं। उसके किसी दुकान या होटल से घर या ऑफ़िस तक ऑर्डर पहुँचाने के समय अन्तराल को भी नोट किया जाता है। इस पूरे काम में गड़बड़ी होने पर उसका लेखा-जोखा उसे हफ़्ते के आख़िर में एक धमकी भरे मैसेज के रूप में भेजा जाता है। मैसेज के अनुसार, अगर कोई वर्कर किसी ग़लती को दो से ज़्यादा बार करेगा तो उसकी आईडी बन्द कर दी जायेगी।

नयी टेक्नोलॉजी के ज़रिये कम्पनी वर्कर को न सिर्फ़ जीपीएस के ज़रिये, बल्कि ब्लूटूथ के ज़रिये भी ट्रैक करती है। इतना सब कुछ करने के बाद भी कम्पनी का वास्ता इस चीज़ से बिल्कुल भी नहीं होता कि वर्कर काम करके ख़ुश है कि नहीं।

नौकरी छूटने के इन सभी ख़तरों से जूझते हुए जो लोग नौकरी में क़ायम रहते हैं, उनको मिलने वाला वेतन उनकी ज़िन्दगी की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा कर पायेगा, इसकी भी कोई गारण्टी इस काम में नहीं है। लॉकडाउन के बाद से कम्पनी ने प्रति ऑर्डर भुगतान में कमी लाने के लिए भी नये-नये हथकण्डे अपनाते हुए यह नियम लागू किया है कि एक जगह पर दो ऑर्डर डिलीवर करने पर दूसरे ऑर्डर पर कम पैसे मिलेंगे। सामान्य ऑर्डर पर किया जाने वाला भुगतान भी कम्पनी की तरफ़ से कम कर दिया गया है। न्यूनतम भुगतान में 57 प्रतिशत की कमी करके उसे 15 रुपये प्रति ऑर्डर कर दिया गया है। पेट्रोल, डीज़ल की बढ़ती क़ीमतों को भी ध्यान में रखा जाये, तो इससे स्थिति और भी भयावह मालूम होती है, क्योंकि स्विगी के वर्करों को पेट्रोल का ख़र्चा भी कम्पनी नहीं देती बल्कि वर्करों को अपने जेबख़र्च से ही इसे किसी तरह से चलाना होता है।

सूरत के डिलीवरी वर्कर किशन ने कम्पनी के इस रवैये के बारे में वायर को सितम्बर 2020 में दिये अपने एक इण्टरव्यू में यह बताया कि छह-आठ साल पहले से शुरू हुई सारी दिक़्क़तें अब इतनी बढ़ गयी हैं कि उन्हें लगता है जैसे वे कम्पनी के ग़ुलाम हों। वहीं विक्रम कहते हैं कि मोदी ने मन की बात में उनकी प्रशंसा की, और कम्पनी ने भी तारीफ़ ही की, लेकिन दोनों ने ही उन्हें कुछ नहीं दिया, बल्कि कोरोना के दौरान मेहनत करने के बदले में उनकी तनख़्वाह ही काट ली गयी।

ऑनलाइन जॉब पोर्टल आसानजॉब्स डॉट कॉम पर स्विगी द्वारा नौकरियों के बारे में डाले गये 2018 के विज्ञापन जहाँ पहले एक वर्कर की तनख़्वाह को 40,000 के ऊपर बताते थे तो आज कम्पनी ने उन्हीं नौकरियों की घोषित मासिक आय 18,000 से ऊपर होने का दावा किया है। जबकि असल में आमदनी और भी कम होती है। एक ऑर्डर पर उन्हें मुश्किल से 15 रुपये मिलते हैं।

लॉकडाउन के दौरान कम्पनी द्वारा किये गये इस शोषण का विरोध करने के लिए वर्कर्स ने अगस्त के महीने से ही हड़ताल करनी शुरू की। सबसे पहले चेन्नई में ऐसा हुआ, फिर सितम्बर में साउथ दिल्ली के 150 वर्करों ने ऐसा किया। दिसम्बर तक यह हड़ताल लगभग पूरे देश में फैल गयी। उन्होंने कम्पनी की ऐप अनइन्स्टॉल (बन्द) कर दी। कम्पनी ने हड़ताल तोड़ने के लिए धमकी मैनेजरों तक की मदद ली। वर्करों को झुकाने के लिए दिल्ली में दूसरी कम्पनियों, जैसे रेपिडो और शैडोफ़ॉक्स को ठेका देकर उनके डिलीवरी वर्करों से काम लिया गया। हड़ताल में भाग लेने वाली यूनियन, ऑल इण्डिया गिग वर्कर्स यूनियन की संयोजक कृष्णास्वामी ने बताया कि स्विगी की तरफ़ से मैसेज आते तो ख़ूब हैं लेकिन अगर आप उनका जवाब देना चाहते हों तो उसके लिए कम्पनी की तरफ़ से कोई व्यक्ति आपकी पहुँच में नहीं होता। वर्कर अगर हब जाकर कम्पनी के किसी व्यक्ति से मिलने जाते हैं तो वहाँ धमकी मैनेजर आकर धमकियाँ देने व समझाने लगते हैं। अब कम्पनी फ़्लीट मैनेजर के पद को ख़त्म कर चुकी थी और अपने अधिकतर काम स्वचालित कर चुकी थी।

पिछले वर्ष 18 मई को स्विगी के सहसंस्थापक ने अपनी कम्पनी के प्रशासनिक ढाँचे को एक ईमेल के ज़रिये भी यह बात बतायी थी कि कर्मचारियों पर व्यय को कम किया जाना मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए आज ज़रूरी हो गया है। और ईमेल के अगले दिन से ही वर्करों-मैनेजरों को निकालने, हब्स को बन्द करने का सिलसिला शुरू हो गया था। जबकि अब कम्पनी ने वर्करों के वेतन में कटौती तथा उनकी हड़ताल ख़त्म करने के लिए धमकी मैनेजर भेजने की बात को सिरे से ही नकार दिया है। कम्पनी कर्मचारियों के शोषण की बात को स्वीकारना तो दूर, बल्कि उन्हें कर्मचारी मानने से ही इन्कार करती है। वह उन्हें स्वतंत्र और स्वरोज़गार प्राप्त व्यक्ति बताती है।

अत्याधुनिक तकनीक से लैस शोषण की इस मशीनरी का मुक़ाबला भी व्यापक क्रान्तिकारी एकता बनाकर ही किया जा सकता है।

सरकार के दावों की पोल खोलता मनरेगा का केन्द्रीय बजट

– प्रवीन, हरियाणा

किसी भी देश की पूँजीवादी व्यवस्था अपने देश के मज़दूरों को गुमराह करने के लिए तमाम तरह के हथियार इस्तेमाल करती रहती है। उन हथियारों में से एक हथियार आँकड़ों की हेरा-फेरी का भी होता है। ऐसा ही कुछ इस बार भारत के केन्द्रीय बजट में देखने को मिला है। वैसे तो पूरा बजट ही आँकड़ों की हेरा-फेरी से भरा हुआ है। लेकिन यहाँ हम पूरे बजट पर चर्चा करने की बजाय सिर्फ़ मनरेगा के इर्द-गिर्द ही बात करेंगे। कोरोना महामारी को अवसर में बदलने में भाजपा सरकार ने कोई कसर नहीं छोड़ी। वैसे तो कोरोना काल के दौर ने इस पूरी पूँजीवादी व्यवस्था की सच्चाई को एकदम नंगा कर दिया है, लेकिन फिर भी दूसरे पूँजीवादी देशों के मुक़ाबले आज भारत की मोदी सरकार कहीं ज़्यादा नंगी नज़र आ रही है। पिछले दिनों तालाबन्दी के दौर में जहाँ मोदी सरकार को कोरोना जैसी महामारी से लड़ने के लिए स्वास्थ्य की सुविधाओं को बढ़ाना था वहीं तब वह ताली और थाली बजाने के नाम पर जनता में अन्धविश्वास फैलाने में लगी हुई थी। जो सरकार ऐसे नाज़ुक दौर में भी अपने देश के प्रवासी मज़दूरों को सही सलामत उनके घर तक न पहुँचा सके तो साफ़ तौर पर समझा जा सकता है कि वह मेहनतकश जनता के प्रति कितनी हितैषी है।

कोरोना महामारी का सबसे ज़्यादा असर अगर किसी पर पड़ा है तो वो इस देश की मज़दूर आबादी है। इस दौरान मज़दूरों की जो दुर्गति हुई है इसका अन्दाज़ा शायद सरकार अपने पूरे कार्यकाल में कभी भी नहीं लगा पायेगी। कोरोना के शुरुआती दौर में लॉकडाउन होने के बाद शहरी मज़दूरों की एक बहुत बड़ी आबादी गाँव की तरफ़ पलायन कर रही थी। हज़ारों किलोमीटर पैदल चलकर मज़दूर अपने गाँव-देहात में पहुँच रहे थे। इस दौरान पता नहीं पैदल चलते-चलते कितने मज़दूरों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। न जाने कितनों को थक-हारने के बाद रेल की पटरियों पर अपनी रात गुज़ारनी पड़ी और कितनों को रेल ने कुचल दिया। अगर आज कोई वह दृश्य याद भी कर ले तो रूह काँप उठे।

लॉकडाउन से लेकर धीरे-धीरे होने वाले अनलॉक का अनुभव हमें बहुत कुछ बताता है। हर रोज़ अपना हाड़-मांस गलाकर पेट भरने वाले मज़दूरों को गाँव में भी किसी न किसी काम की ज़रूरत तो थी। बिना काम किये उनका वहाँ भी पेट भरने वाला नहीं था। अब गाँव में उन्होंने काम की तलाश में मनरेगा के जॉब कार्ड बनवाने शुरू किये। इस दौरान पढ़े-लिखे नौजवान भी पीछे नहीं रहे। अब बेरोज़गारी की मार ऐसी पड़ी कि एमए-बीए किये नौजवान भी मनरेगा की लाइन में खड़े हो गये। गाँव में अब उनका सहारा केवल मनरेगा ही बन सकती थी। मनरेगा में सीमित बजट होने के कारण पहले ही हर किसी को काम मिलना सम्भव नहीं था, तो भला अब हर किसी को काम कैसे मिल पाता। वैसे भी इस विभाग पर पहले से ही बजट की कमी के साथ-साथ धाँधली का आरोप लगता रहता है। अब गाँव में मज़दूरों की संख्या बढ़ने से मनरेगा पर भार बढ़ना लाज़िमी था। वित्त वर्ष 2020-2021 में वित्त मंत्री निर्मला सीतारमन ने बजट में मनरेगा के लिए 61,500 करोड़ रुपये आवण्टित किये थे। लेकिन अब गाँव में मज़दूरों की संख्या बढ़ने से सरकार पर एक दबाव था। इस दबाव के चलते केन्द्र सरकार ने मनरेगा के लिए 40,000 करोड़ रुपये के अतिरिक्त बजट का ऐलान किया। अब मनरेगा का बजट सरकार की नज़रों में काफ़ी बढ़ चुका था। लेकिन सच्चाई यह है कि मज़दूरों की संख्या के हिसाब से देखा जाये तो ये बजट भी मनरेगा के लिए बिल्कुल पर्याप्त नहीं माना जा सकता।

सरकारी आँकड़ों के हिसाब से ही देखें तो वर्ष 2020 में पहली छमाही के दौरान ही मनरेगा पर 64,000 करोड़ रुपये ख़र्च हो चुके थे। यानी जो सरकार ने अतिरिक्त बजट से पहले बजट दिया था उससे भी ज़्यादा तो मनरेगा में 6 महीने में ही ख़र्च हो चुका। अगले साल के बजट पर आने से पहले हम थोड़ा और पिछले बजट को आँकड़ों की रौशनी में परखते हैं। एक सर्वे के अनुसार पिछले साल अक्टूबर अन्त तक मनरेगा का क़रीब 91 फ़ीसदी बजट ख़र्च हो चुका था। लेकिन 91 फ़ीसदी बजट ख़र्च होने के बाद भी लगभग 2 फ़ीसदी परिवारों को ही 100 दिन का काम मिल पाया। यानी साल 2020-21 में इस योजना के तहत बेशक 6.26 करोड़ परिवारों को काम दिया गया, लेकिन 100 दिन का काम 13,53,994 (2.16 प्रतिशत) परिवारों को ही मिल पाया है। यानी एक साल में 100 दिन के काम की गारण्टी देने वाली सरकार उसका आधा भी नहीं दे पा रही। इन सभी आँकड़ों से यह साफ़-साफ़ ज़ाहिर होता है कि अतिरिक्त बजट मिलने के बाद भी कुल बजट मनरेगा के लिए पर्याप्त नहीं है।

अब अगर हम 2021-2022 के बजट की बात करें तो इस बार सरकार ने मनरेगा को सिर्फ़ 73,000 करोड़ रुपये ही आवण्टित किये हैं। जो पिछली बार के कुल बजट की तुलना में 34 फ़ीसदी की गिरावट मानी जा सकती है। पिछले आँकड़ों को देखते हुए कहा जा सकता है कि यह बजट मनरेगा के लिए कहीं से भी उचित नहीं है। बिकाऊ मीडिया इस बजट को भी पूरा बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहा है ताकि सरकार की सभी कमियों को छुपाया जा सके। लेकिन मीडिया चाहे कितना भी ज़ोर क्यों न लगा ले हक़ीक़त सामने आ ही जाती है।

मनरेगा में 100 दिन के काम की गारण्टी सरकार देती है लेकिन वह अपनी ज़ुबान पर कहीं भी खरी नहीं उतरती। आँकड़ों के हिसाब से मनरेगा में काम की औसत लगभग 35 से 40 दिन के बीच भी बड़ी मुश्किल से पड़ती है। देखा जाये तो सरकार को मनरेगा में मज़दूरों को पूरे साल काम देना चाहिए लेकिन यहाँ सरकार अपने हिसाब से तय दिनों के अनुसार भी नहीं दे पा रही। मनरेगा विभाग में बेरोज़गारी भत्ते का प्रावधान भी किया गया है। यानी अगर किसी मज़दूर को 15 दिन तक काम न मिले तो वह अपने लिए बेरोज़गारी भत्ते की अपील डाल सकता है। लेकिन हमारे देश का दुर्भाग्य यह है कि लोगों की राजनीतिक चेतना के अभाव और सरकार की तमाम कमियों के कारण (जो सरकार ख़ुद भी कभी दूर नहीं करना चाहती) हमारे देश की जनता को उनके अधिकारों का पता ही नहीं चल पाता।

अगर कोई मज़दूर ग़लती से बेरोज़गारी भत्ते की बात भी कर देता है तो मनरेगा विभाग के अधिकारी भी बेरोज़गारी भत्ते के बारे में मज़दूरों को विस्तार से बताने की बजाय उनको गुमराह करने का काम ही करते हैं। मनरेगा के तहत मज़दूरों को जहाँ भी काम मिलता है वहाँ छाया और पानी की व्यवस्था सरकार को करनी होती है। अब तक देखा यही गया है कि मनरेगा मज़दूरों के लिए सरकार ने आज तक ऐसी कोई व्यवस्था की ही नहीं। उल्टा मज़दूरों को ही अपने लिए छाया और पानी का इन्तज़ाम करना पड़ता है। इन सब बातों से एक बात साफ़ हो जाती है कि सरकार चाह कर भी यह सब करना नहीं चाहती। वह सिर्फ़ मनरेगा के नाम पर रस्म अदायगी ही करती है। वह बजट के नाम व बाक़ी सारी चीज़ों के नाम मज़दूरों को चन्द टुकड़े बाँटकर, उनका जाति-धर्म व चुनाव जैसी सभी जगह सिर्फ़ इस्तेमाल करना चाहती है। इसलिए मज़दूरों को आज से ही यह समझने की ज़रूरत है कि उनकी सत्ता से यह लड़ाई लम्बी है। जो सिर्फ़ विचार व एकजुटता के दम पर ही जीती जा सकती है। इसलिए हमें क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन की तरफ़ से सरकार के सामने निम्नलिखित माँगें पेश करनी चाहिए –

1. मनरेगा मज़दूरों के लिए पूरे साल काम की व्यवस्था करो, दिहाड़ी 770 रुपये करो।
2. काम के दौरान छाया और पानी की व्यवस्था सुचारू रूप से की जाये।
3. भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून बनाओ।
4. रोज़गार न दे पाने की सूरत में 10,000 रुपये बेरोज़गारी भत्ता दो।
5. मज़दूर विरोधी चार लेबर कोड वापस लो।
6. सरकारी उपक्रमों का निजीकरण करना बन्द करो।
7. आवश्यक वस्तु अधिनियम-1955 में बदलाव रद्द किया जाये।

फ़ासीवादी सरकार द्वारा प्रायोजित दिल्ली दंगों का एक साल

(पेज 4 से आगे)

उठायेगा? बर्बर दंगाई गिरोहों और पुलिस की मिलीभगत को सिद्ध करते कई वीडियो सामने आ चुके हैं, कुछ वीडियों में तो पुलिस वाले पत्थर चलाते दिख रहे हैं, साथ ही कई वीडियो में पुलिस के सिपाहियों को सीसीटीवी कैमरे तोड़ते हुए भी साफ़ देखा गया है! बेशक दंगों में लिप्त व्यक्तियों को बख़्शा नहीं जाना चाहिए, भले ही उनकी जातीय या धार्मिक पृष्ठभूमि कोई भी हो, किन्तु बदले की भावना के तहत कार्रवाई किया जाना भी क़त्तई जायज़ नहीं है। हम सभी जानते हैं कि सीएए-एनआरसी के विरोध में देशभर में हो रहे विरोध-प्रदर्शनों से भाजपा सरकार बुरी तरह बौखलायी हुई थी। इसलिए यह साफ़ तौर पर समझा जा सकता है कि कोरोना महामारी के कारण हुए लॉकडाउन के नाज़ुक दौर में भी सरकार के इशारों पर दिल्ली पुलिस बहुत से निर्दोष कार्यकर्ताओं को परेशान करने, डराने और जेल में बन्द करने के प्रयास में लगी रही है जो आन्दोलन में अगुआ भूमिका में थे। अतः **एकदम साफ़ है कि सबकुछ एक सोची-समझी योजना और रणनीति के तहत हुआ है और गुजरात दंगा-2002 मॉडल को ही एक सीमित और नियंत्रित स्तर पर फिर से लागू किया गया है।**

'मज़दूर बिगुल' के जनवरी 2020 अंक के सम्पादकीय में पहले ही इस बात की सम्भावना जतायी गयी थी कि सीएए-एनआरसी का जनप्रतिरोध अब एक देशव्यापी जनान्दोलन बन रहा है, और इस आन्दोलन से फ़ासीवादी भाजपा सरकार डर गयी है और अपनी बौखलाहट में ये जनद्रोही किसी भी तरह की घृणित हरकत कर सकते हैं। इस जनआन्दोलन को समाप्त करने के लिए ही फ़ासीवादी सत्ताधारियों द्वारा दिल्ली में दंगा कराने की घृणित हरकत की गयी।

दिल्ली की राज्य-प्रायोजित हिंसा व दंगों ने विपक्षी संसदीय दलों का चरित्र एकदम नंगा कर दिया था। **दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल की "विचारधारा-विहीन", "नागरिकतावाद" की राजनीति एकदम नंगी हो गयी और सभी भ्रमग्रस्त नेकदिल नागरिकों को भी यह बात समझ आ गयी कि यह जोकर संघ की बी टीम है और इसकी धुर-दक्षिणपन्थी लोकरंजक राजनीति कुल मिलाकर संघी फ़ासिज़्म की पूरक शक्ति ही है।** दंगों से पहले शाहीन बाग़ या दिल्ली में सीएए-एनआरसी के विरोध में चल रहे किसी भी प्रदर्शन में केजरीवाल नहीं गया। बल्कि केजरीवाल का कहना था कि अगर उसके पास पावर होती तो 2 घण्टे में शाहीन बाग़ का रास्ता खुलवा देता। साथ ही 24 फ़रवरी 2020 को जब कुछ मुस्लिम सामाजिक कार्यकर्ता केजरीवाल से मिले थे और उनसे अपील की थी कि वे (केजरीवाल) अपने कुछ मंत्रियों के साथ उत्तर-पूर्वी दिल्ली के दंगा प्रभावित इलाक़ों में आयें, दंगा रुकवाने की कोशिश करें, वे और उनके मंत्रियों की सुरक्षा में पुलिस की भारी तैनाती होने के चलते दंगे रुक सकते है,' तो ख़ुद संघी मानसिकता से ग्रस्त केजरीवाल ने लोगों की इस अपील को ठुकरा दिया और दिल्ली के दंगा प्रभावित इलाक़ों में न जाकर 25 फ़रवरी 2020 को दिल्ली के राजघाट जाकर दंगों में शान्ति की अपील करने की नौटंकी की। अन्य विपक्षी दलों के नेता भी बयान देने और ट्वीट करने से इंच भर भी आगे नहीं गये! किसी के कलेजे में यह दम नहीं था कि अपने कार्यकर्ताओं को लेकर फ़ासिस्ट गुण्डों का सामना कर सके! दरअसल इनके पास कार्यकर्ता के नाम पर सिर्फ़ छुटभैया दलाल, गुण्डे-लफ़ंगे ही रह गये हैं और उनके दिमाग़ का भी बड़े पैमाने पर साम्प्रदायीकरण हो गया है।

दिल्ली पुलिस दिल्ली दंगों की जाँच में प्रदर्शनकारियों को ही दंगाई दिखाने की कोशिश कर रही है, पर असलियत यही है कि पिछले साल फ़रवरी में हुए दिल्ली दंगे देशव्यापी जनान्दोलन से डरी फ़ासीवादी मोदी सरकार की साज़िश थी। **सत्ताधारी फ़ासीवादियों को लगता है कि दमन से या दंगा-फ़साद से किसी जनान्दोलन को हमेशा के लिए समाप्त किया जा सकता है तो यह उनके ख़्याली पुलाव से ज़्यादा कुछ नहीं है। पिछले दिनों बंगाल चुनाव के दौरान एक रैली में तड़ीपार अमित शाह ने कहा कि कोरोना वैक्सीनेशन का काम पूरा होते ही सीएए लागू किया जायेगा। तो यह तय है कि जनता भी ऐसे काले क़ानूनों के ख़िलाफ़ फिर सड़कों पर उतरेगी। भविष्य में होने वाले जनान्दोलन को सुसंगठित बनाकर और दिशा देकर ही फ़ासीवादियों की किसी भी घृणित हरकत का सामना किया जा सकता है और आन्दोलन को जीत तक पुहँचाया जा सकता है।**

– बिगुल संवाददाता

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के 90वें शहादत दिवस (23 मार्च) के अवसर पर

"यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी जब तक भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर शक्तिशाली व्यक्तियों का एकाधिकार रहेगा..."

'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद' क्रान्तिकारियों के लिए महज़ एक भावनात्मक रणघोष नहीं था बल्कि एक उदात्त आदर्श था जिसकी व्याख्या हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एच.एस.आर.ए.) ने इस रूप में की:

"क्रान्ति पूँजीवाद, वर्गवाद तथा कुछ लोगों को ही विशेषाधिकार दिलाने वाली प्रणाली का अन्त कर देगी। ...उससे नवीन राष्ट्र और नये समाज का जन्म होगा।"

एच.एस.आर.ए. के एक और घोषणापत्र में कहा गया कि "क्रान्ति हताशा का दर्शन या हताश लोगों का पन्थ नहीं है"। इसका अन्त इन शब्दों से हुआ :

"व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की हिफ़ाज़त की जायेगी। सर्वहारा की सम्प्रभुता को मान्यता दी जायेगी। हम ऐसी क्रान्ति की उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

भगतसिंह ने 6 जून, 1929 को अदालत में अपने बयान में और भी साफ़ शब्दों में कहा :

"क्रान्ति बम और पिस्तौल का सम्प्रदाय नहीं है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है - अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।"

भगतसिंह कार्ल मार्क्स की इस बात से सहमत थे कि आमूल क्रान्ति काल्पनिक नहीं होती। "यूटोपियाई तो एक आंशिक, एक विशुद्ध राजनीतिक क्रान्ति की धारणा होती है, जो (पूँजीवादी व्यवस्था की-सं.) इमारत के खम्भों को खड़ा छोड़ देगी।" एच.एस.आर.ए. का लक्ष्य ऐसी क्रान्ति करना था जो भारतीय समाज के वर्तमान सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक ढाँचे को ध्वस्त करके एक नये युग की शुरुआत करेगी। उनकी क्रान्ति अराजकता या अव्यस्था के लिए नहीं बल्कि सामाजिक न्याय के लिए थी।

जब तक क्रान्तिकारियों का तीसरा उद्देश्य, यानी समाजवाद हासिल न हो जाये तब तक क्रान्ति की स्पिरिट को जगाये रखना होगा। यह लक्ष्य अस्पष्ट या धुँधली धारणाओं या नौजवानी के अधैर्य पर आधारित नहीं था। उनकी विचारधारा गहन अध्ययन और सघन विचार-विमर्श के बाद निर्मित हुई थी। भगतसिंह ने द्वारकादास लाइब्रेरी को रूस, आयरलैण्ड और इटली की क्रान्तियों के बारे में साहित्य का दुर्लभ संग्रह हासिल करने में मदद की थी। उन्होंने सुखदेव और दूसरे लोगों की मदद से बहुत-से अध्ययन मण्डल संगठित किये थे और सघन राजनीतिक चर्चाएँ संचालित की थीं। ये अध्ययन मण्डल रूस के सामाजिक क्रान्तिकारी क्रोपोटकिन की तर्ज़ पर चलाये जाते थे। ...पंजाब और संयुक्त प्रान्त दोनों में युवा क्रान्तिकारी समाजवाद में गहरी दिलचस्पी ले रहे थे। लाहौर षड्यन्त्र केस में उनके साथ जेल में रहे जितेन्द्रनाथ सान्याल ने 1931 में बौद्धिक व्यक्ति के तौर पर भगतसिंह का यह मूल्यांकन रखा था :

"भगतसिंह बेहद पढ़े-लिखे व्यक्ति थे और उनके अध्ययन का विशेष दायरा था समाजवाद... हालाँकि समाजवाद उनका विशेष विषय था, पर उन्होंने 19वीं सदी की शुरुआत से लेकर 1917 की अक्टूबर क्रान्ति तक रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास का गहन अध्ययन किया था। आम तौर पर माना जाता है कि इस विशेष विषय की जानकारी में हिन्दुस्तान में कुछ ही लोगों की उनसे तुलना की जा सकती है। बोल्शेविक शासन में रूस में किये गये आर्थिक प्रयोगों में भी उनकी बहुत दिलचस्पी थी।"

जेल में रहने के दौरान उनकी बौद्धिक क्षमता दिन दूनी-रात चैगुनी रफ़्तार से बढ़ी और उन्होंने कई किताबें लिखीं जिनमें से चार अहम थीं: आत्मकथा, मृत्यु का द्वार, समाजवाद का आदर्श और भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन। दुर्भाग्यवश, इन सबकी पाण्डुलिपियाँ गुम हो चुकी हैं। उनकी जेल नोटबुक से उनकी पढ़ने की आदत का पता चलता है और यह भी पता चलता है कि कितने विविध प्रकार के लेखकों की कृतियाँ वे गहरी दिलचस्पी से पढ़ते थे। इनमें मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, रसेल, टॉमस पेन, अप्टन सिंक्लेयर, वर्ड्सवर्थ, टेनीसन, टैगोर, बुखारिन, त्रॉत्स्की और बहुत-से अन्य शामिल थे। भगवतीचरण वोहरा और सुखदेव

– एस. इरफ़ान हबीब

ने भी समाजवादी साहित्य का व्यापक अध्ययन किया था। सुखदेव भी बहुत अधिक बौद्धिक क्षमतासम्पन्न व्यक्ति थे और उनके भाई ने तो उन्हें एच.एस.आर.ए. का चाणक्य कहा है। यशपाल ने लिखा है कि 1924-25 में भगवतीचरण क्रान्तिकारी भावनाओं से प्रेरित होकर कम्युनिस्ट समूहों के क़रीब आ गये थे और यूरोप से सभी अख़बार उनके पते पर मँगाये जाते थे। वह कार्ल मार्क्स और लेनिन को अपना 'राजनीतिक गुरु और गाइड' मानते थे। समाजवाद में उनकी अडिग आस्था थी।...

एक और इतनी ही महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भगतसिंह और उनके साथी पार्टी के दूसरे सदस्यों को भी समाजवाद के आदर्शों और उसूलों को समझने में मदद करने के लिए कड़ी मेहनत करते थे। नौजवान भारत सभा का गठन मुख्यतः समाजवाद के आदर्शों का प्रचार करने, मज़दूरों और किसानों को संगठित करने और इस तरह क्रान्तिकारी उभार की रफ़्तार तेज़ करने के लिए किया गया था। भगतसिंह ने लाहौर की अदालत में दिये गये अपने इस बयान के ज़रिए विचारों के महत्त्व पर बल दिया था कि "क्रान्ति की तलवार विचारों की सान पर तेज़ होती है"। भगवानदास माहौर ने भी लिखा है कि किस तरह भगतसिंह उनसे मार्क्स की 'पूँजी' और दूसरी किताबें पढ़ने के लिए आग्रह करते रहते थे।

बेहिचक यह कहा जा सकता है कि एच.एस.आर.ए. के सदस्यों ने समाजवाद और मार्क्सवाद की ख़ासी अच्छी समझ विकसित कर ली थी। उन्हें जितना थोड़ा समय मिला था उसमें बेशक वे बड़े विद्वान नहीं बने होंगे लेकिन वे महज़ नौसिखुये भी नहीं थे। उन्होंने कुछ दूरी तय की थी और अध्ययन करते और सोचते-विचारते हुए भारतीय क्रान्ति की समस्याओं की वैज्ञानिक समाजवादी समझ की ओर धीरे-धीरे क़दम बढ़ा रहे थे। भगतसिंह के अन्तिम सन्देश से लगता है कि उन्होंने यह समझ लिया था कि किसी वांछित व्यवस्था के लिए महज़ आत्मगत चाहत से समाजवाद नहीं आ सकता बल्कि यह सामाजिक परिस्थितियों की अपरिहार्यता की वस्तुगत पैदावार होती है।... अपने साथ जेल में मृत्युदण्ड की प्रतीक्षा कर रहे सुखदेव के मन में लक्ष्य को लेकर सन्देह उठने पर उन्हें लिखे ख़त में भगतसिंह ने कहा था :

"यदि हम इस क्षेत्र में न उतरे होते, तो क्या कोई भी क्रान्तिकारी कार्य हुआ ही न होता? अगर ऐसा सोचते हैं तो आप भूल कर रहे हैं। हालाँकि यह ठीक है कि हम भी माहौल को बदलने में बड़ी सीमा तक सहायक सिद्ध हुए हैं, फिर भी हम तो केवल अपने समय की आवश्यकता की उपज हैं। मैं तो यह भी कहूँगा कि साम्यवाद के जन्मदाता मार्क्स, वास्तव में इस विचार को जन्म देने वाले नहीं थे। असल में यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति ने ही एक विशेष प्रकार के विचारों वाले व्यक्ति उत्पन्न किये थे। उनमें मार्क्स भी एक थे। हाँ, अपने स्थान पर मार्क्स भी निस्सन्देह कुछ सीमा तक समय के चक्र को एक विशेष प्रकार की गति देने में आवश्यक सहायक सिद्ध हुए हैं। मैंने (और आपने भी) इस देश में समाजवाद और साम्यवाद के विचारों को जन्म नहीं दिया, वरन यह तो हमारे ऊपर हमारे समय एवं परिस्थिति के प्रभाव का परिणाम है। निस्सन्देह हमने इन विचारों का प्रचार करने के लिए कुछ साधारण एवं तुच्छ कार्य अवश्य किया है।"

चन्द्रशेखर आज़ाद 1930 में नेहरू से मिले थे और उनकी बातचीत के दौरान नेहरू ने आज़ाद से पूछा था कि वह किस तरह के समाजवादी थे? आज़ाद ने जवाब दिया कि वह वैज्ञानिक समाजवाद में यक़ीन करते हैं और जो लोग कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों को मानते हैं वे उनके आन्दोलन में रह सकते हैं। एच.एस.आर.ए. का नेतृत्व स्पष्ट तौर पर यह समझता था कि समाजवाद ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज है और इसलिए व्यवस्था के तौर पर वह पूँजीवाद का नकार है। इसलिए समाजवाद लाने की पूर्वशर्त है पूँजीवाद का ख़ात्मा।

भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने 6 जून, 1929 के अपने साझा बयान में इस मुद्दे को और साफ़ किया :

"समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मज़दूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूँजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनियाभर के बाज़ारों को कपड़ा मुहैया करने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढँकनेभर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूँजीपति ज़रा-ज़रा-सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं। ...देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें।"

अक्टूबर 1930 में जेल से दिये एक सन्देश में भगतसिंह ने कहा था :

"क्रान्ति से हमारा अर्थ है - वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकना। इसके लिए, राज्यसत्ता पर अधिकार करना ज़रूरी है। अभी राज्य मशीनरी एक विशेष सुविधा-प्राप्त वर्ग के हाथों में है। जनता के हितों की रक्षा और अपने आदर्श को यथार्थ में बदलना, यानी कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार समाज की नींव रखना - इन सबके लिए यह ज़रूरी है कि इस मशीनरी पर हमारा ही अधिकार हो।"

राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम अपने सन्देश में भगतसिंह ने क्रान्ति और समाजवाद के मुद्दे पर स्पष्ट तरीक़े से अपनी बात कही थी। फाँसी पर लटकाये जाने के क़रीब एक महीना पहले दिये गये इस सन्देश में उन्होंने नौजवान राजनीतिक कार्यकर्ताओं से कहा था :

"हम समाजवादी क्रान्ति चाहते हैं, जिसके लिए बुनियादी ज़रूरत राजनीतिक क्रान्ति की है। यही है जो हम चाहते हैं। राजनीतिक क्रान्ति का अर्थ राज्यसत्ता (यानी मोटे तौर पर ताक़त) का अंग्रेज़ी हाथों से भारतीय हाथों में आना है और वह भी उन भारतीयों के

(पेज 14 पर जारी)

मज़दूर वर्ग की मुक्ति का दर्शन देने वाले महान क्रान्तिकारी चिन्तक कार्ल मार्क्स के स्मृति दिवस (14 मार्च) के अवसर पर

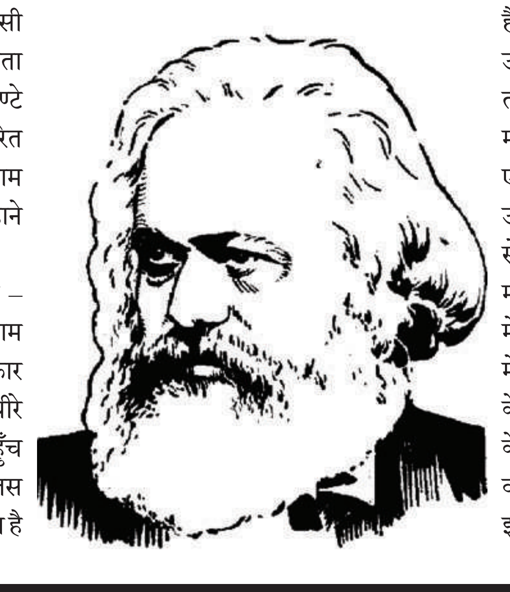

मार्क्स-एंगेल्स की अमर रचना “कम्युनिस्ट घोषणापत्र’ के कुछ अंश

बुर्जुआ वर्ग ने ऐसे हथियारों को ही नहीं गढ़ा है जो उसका अन्त कर देंगे, बल्कि उसने ऐसे लोगों को भी पैदा किया है जो इन हथियारों का इस्तेमाल करेंगे – आधुनिक मज़दूर वर्ग – सर्वहारा वर्ग।

जिस अनुपात में बुर्जुआ वर्ग का, अर्थात पूँजी का विकास होता है, उसी अनुपात में सर्वहारा वर्ग का, आधुनिक मज़दूर वर्ग का, उन श्रमजीवियों के वर्ग का विकास होता है, जो तभी तक ज़िन्दा रह सकते हैं जब तक उन्हें काम मिलता जाये, और उन्हें काम तभी तक मिलता है, जब तक उनका श्रम पूँजी में वृद्धि करता है। ये श्रमजीवी, जो अपने को अलग-अलग बेचने के लिए लाचार हैं, अन्य व्यापारिक माल की तरह ख़ुद भी माल हैं, और इसलिए वे होड़ के उतार-चढ़ाव तथा बाज़ार की हर तेज़ी-मन्दी के शिकार होते हैं।

मशीनों के विस्तृत इस्तेमाल तथा श्रम विभाजन के कारण सर्वहाराओं के काम का वैयक्तिक चरित्र नष्ट हो गया है और इसलिए यह काम उनके लिए आकर्षक नहीं रह गया है। मज़दूर मशीन का पुछल्ला बन जाता है और उससे सबसे सरल, सबसे नीरस और आसानी से अर्जित योग्यता की माँग की जाती है। इसलिए मज़दूर के उत्पादन पर ख़र्च लगभग पूर्णतः उसके जीवन निर्वाह और वंश वृद्धि के लिए आवश्यक साधनों तक सीमित रह गया है। लेकिन हर माल का, और इसलिए श्रम का भी दाम उसके उत्पादन में लगे हुए ख़र्च के बराबर होता है। अतः जिस अनुपात में काम की अरुचिकरता में वृद्धि होती है उसी अनुपात में मज़दूरी घटती है। यही नहीं, जिस मात्रा में मशीनों का इस्तेमाल तथा श्रम विभाजन बढ़ता है उसी मात्रा में श्रम का बोझ भी बढ़ता जाता है, चाहे यह काम के घण्टे बढ़ाने के ज़रिए हो या निर्धारित समय में मज़दूरों से अधिक काम लेने या मशीन की रफ़्तार बढ़ाने आदि के ज़रिए।

...मध्यम वर्ग के निम्न स्तर – छोटे कारोबारी, दूकानदार, आम तौर पर किरायाजीवी, दस्तकार और किसान – ये सब धीरे-धीरे सर्वहारा वर्ग की स्थिति में पहुँच जाते हैं। कुछ तो इसलिए कि जिस पैमाने पर आधुनिक उद्योग चलता है उसके लिए उनकी छोटी पूँजी पूरी नहीं पड़ती और बड़े पूँजीपतियों के साथ होड़ में वह डूब जाती है; और कुछ इसलिए कि उत्पादन के नये-नये तरीक़ों के निकल आने के कारण उनके विशिष्टीकृत कौशल का कोई मूल्य नहीं रह जाता है। इस प्रकार आबादी के सभी वर्गों से सर्वहारा वर्ग की भर्ती होती है।

...उद्योग के विकास के साथ-साथ सर्वहारा वर्ग की संख्या में ही वृद्धि नहीं होती, बल्कि वह बड़ी-बड़ी जमातों में संकेन्द्रित हो जाता है, उसकी ताक़त बढ़ जाती है और उसे अपनी इस ताक़त का अधिकाधिक अहसास होने लगता है। मशीनें जिस अनुपात में श्रम के सभी भेदों को मिटाती जाती हैं और लगभग सभी जगह मज़दूरी को एक ही निम्न स्तर पर लाती जाती हैं, उसी अनुपात में सर्वहारा वर्ग की पाँतों में नाना प्रकार के हित और जीवन की अवस्थाएँ अधिकाधिक एकसम होती जाती हैं। बुर्जुआ वर्ग की बढ़ती हुई आपसी होड़ और उससे पैदा होने वाले व्यापारिक संकटों के कारण मज़दूरी और भी अस्थिर हो जाती है। मशीनों में लगातार सुधार, जो निरन्तर तेज़ी के साथ बढ़ता जाता है, मज़दूरों की जीविका को अधिकाधिक अनिश्चित बना देता है। अलग-अलग मज़दूरों और अलग-अलग पूँजीपतियों की टक्करें अधिकाधिक रूप से दो वर्गों के बीच की टक्करों की शक्ल अख़्तियार करती जाती हैं। और तब बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध मज़दूर अपने संगठन (ट्रेड यूनियनें) बनाने लगते हैं, मज़दूरी की दर को क़ायम रखने के लिए वे संघबद्ध होते हैं; समय-समय पर होने वाली इन टक्करों के लिए पहले से तैयार रहने के लिए वे स्थायी संघों की स्थापना करते हैं। जहाँ-तहाँ उनकी लड़ाई बलवों का रूप धारण कर लेती है।

जब-तब मज़दूरों की जीत भी होती है लेकिन केवल वक़्ती तौर पर। उनकी लड़ाइयों का असली फल तात्कालिक नतीजों में नहीं, बल्कि मज़दूरों की निरन्तर बढ़ती हुई एकता में है। आधुनिक उद्योग द्वारा उत्पन्न किये गये संचार साधनों से, जो अलग-अलग जगहों के मज़दूरों को एक-दूसरे के सम्पर्क में ला देते हैं, एकता के इस काम में मदद मिलती है। एक ही प्रकार के अनगिनत स्थानीय संघर्षों को केन्द्रीकृत करके उन्हें एक राष्ट्रीय वर्ग संघर्ष का रूप देने के लिए बस इसी प्रकार के सम्पर्क की ज़रूरत होती है। लेकिन प्रत्येक वर्ग संघर्ष एक राजनीतिक संघर्ष होता है। और उस एकता को, जिसे हासिल करने के लिए पुराने ज़माने में यातायात की घोर असुविधाओं के कारण मध्ययुग के बर्गरों को सदियाँ लगी थीं, रेलों की कृपा से आधुनिक सर्वहारा कुछ ही वर्षों में हासिल कर लेते हैं।

...बुर्जुआ वर्ग के मुक़ाबले में आज जितने भी वर्ग खड़े हैं, उन सबमें सर्वहारा ही वास्तव में क्रान्तिकारी वर्ग है। दूसरे वर्ग आधुनिक उद्योग के समक्ष ह्रासोन्मुख होकर अन्ततः विलुप्त हो जाते हैं; सर्वहारा वर्ग ही उसकी मौलिक और विशिष्ट उपज है।

निम्न मध्यम वर्ग के लोग – छोटे कारख़ानेदार, दूकानदार, दस्तकार और किसान – ये सब मध्यम वर्ग के अंश के रूप में अपने अस्तित्व को नष्ट होने से बचाने के लिए बुर्जुआ वर्ग से लोहा लेते हैं। इसलिए वे क्रान्तिकारी नहीं, रूढ़िवादी हैं। इतना ही नहीं, चूँकि वे इतिहास के चक्र को पीछे की ओर घुमाने की कोशिश करते हैं, इसलिए वे प्रतिगामी हैं। अगर कहीं वे क्रान्तिकारी हैं तो सिर्फ़ इसलिए कि उन्हें बहुत जल्द सर्वहारा वर्ग में मिल जाना है; चुनाँचे वे अपने वर्तमान नहीं, बल्कि भविष्य के हितों की रक्षा करते हैं; अपने दृष्टिकोण को त्यागकर वे सर्वहारा का दृष्टिकोण अपना लेते हैं।

...आज तक जिन-जिन वर्गों का पलड़ा भारी हुआ है, उन सबने अपने पहले से हासिल दरजे को मज़बूत बनाने के लिए समाज को अपनी हस्तगतकरण प्रणाली के अधीन करने की कोशिश की है। सर्वहारा वर्ग अपनी अब तक की हस्तगतकरण प्रणाली का और उसके साथ-साथ पहले की प्रत्येक हस्तगतकरण प्रणाली का अन्त किये बिना समाज की उत्पादक शक्तियों का स्वामी नहीं बन सकता। सर्वहारा वर्ग के पास बचाने और सुरक्षित रखने के लिए अपना कुछ भी नहीं है; उसका लक्ष्य निजी स्वामित्व की पुरानी सभी गारण्टियों और ज़मानतों को नष्ट कर देना है।

पहले के सभी ऐतिहासिक आन्दोलन अल्पमत के आन्दोलन रहे हैं या अल्पमत के फ़ायदे के लिए रहे हैं। किन्तु सर्वहारा आन्दोलन विशाल बहुमत का, विशाल बहुमत के फ़ायदे के लिए होने वाला चेतन तथा स्वतन्त्र आन्दोलन है। हमारे वर्तमान समाज का सबसे निचला स्तर, सर्वहारा वर्ग, शासकीय समाज की सभी ऊपरी परतों को पलटे बिना हिल तक नहीं सकता, किसी प्रकार अपने को ऊपर नहीं उठा सकता।

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के 90वें शहादत दिवस (23 मार्च) के अवसर पर

(पेज 13 से आगे)

हाथों में, जिनका अन्तिम लक्ष्य हमारे लक्ष्य से मिलता हो। और स्पष्टता से कहें तो – सामान्य जनता की कोशिश से राज्यसत्ता क्रान्तिकारी पार्टी के हाथों में आना। इसके बाद पूरी संजीदगी से पूरे समाज को समाजवादी दिशा में ले जाने के लिए जुट जाना होगा।”

...जेल से भेजे अपने सन्देश में भगतसिंह ने लिखा था कि, “किसानों को सिर्फ़ विदेशी शासन के जुवे से ही नहीं बल्कि ज़मींदारों और पूँजीपतियों के जुवे से भी ख़ुद को आज़ाद कराना है”। 3 मार्च, 1931 के अपने सन्देश में उन्होंने और भी साफ़ तौर पर कहा:

“युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी जब तक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है – चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज़ पूँजीपति हों या अंग्रेज़ और भारतीय पूँजीपतियों का गँठजोड़ हो, उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। चाहे शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों द्वारा ही निर्धनों का ख़ून चूसा जा रहा हो, इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।”

शोषण का ख़ात्मा और मज़दूरों-किसानों के समाजवादी राज्य की स्थापना सिर्फ़ इन वर्गों को संगठित करके ही सम्भव थी। एच.एस.आर.ए. ने इस सवाल पर विचार किया: क्रान्ति के लिए कौन लड़ेगा या आन्दोलन का सामाजिक आधार क्या होगा? वे इस सच्चाई से वाकिफ़ थे कि उनका आन्दोलन जनसाधारण – मज़दूरों, किसानों और रैडिकल बुद्धिजीवियों को संगठित करने पर आधारित होगा। वे मानते थे कि “मज़दूर ही वास्तव में समाज को पालता है। जनता की सम्प्रभुता ही मज़दूरों की अन्तिम नियति है”। जनवरी 1930 में कानपुर में हुई एच.एस.आर.ए. की केन्द्रीय कमेटी की बैठक, जिसमें औरों के साथ चन्द्रशेखर आज़ाद, भगवतीचरण वोहरा, यशपाल और कैलाशपति ने हिस्सा लिया था, में विद्यार्थियों, किसानों और मज़दूरों के बीच काम तेज़ करने और इस मक़सद से पार्टी का एक अलग हिस्सा गठित करने का निर्णय लिया गया जिसके अध्यक्ष दामोदर स्वरूप और सचिव भगवतीचरण होंगे।...

एच.एस.आर.ए. भारतीय समाज में फैली हर क़िस्म की संकीर्णता, रूढ़िवाद और धार्मिक उन्माद के खिलाफ़ था। शुरुआती क्रान्तिकारी आन्दोलनों के विपरीत धर्म को इसके संगठनकर्ताओं के सेक्युलर और राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर प्रधानता नहीं दी जाती थी जो देश के अलग-अलग धार्मिक समूहों से आते थे। रूढ़िवादी और सामाजिक भेदभाव पैदा करने वाली जातिवादी सोच को दूर करने और लोगों में स्वस्थ सेक्युलर राष्ट्रीय भावनाएँ विकसित करने के लिए नौजवान भारत सभा सामाजिक मेल-जोल के आयोजन करती थी और सामाजिक-राजनीतिक मसलों पर व्याख्यान करवाती थी। ...एच.एस.आर.ए. के 'बम का दर्शन' में भी कहा गया कि “आज की तरुण पीढ़ी को जो मानसिक ग़ुलामी तथा धार्मिक रूढ़िवादी बन्धन जकड़े हैं उनसे छुटकारा पाने के लिए तरुण समाज की जो बेचैनी है, क्रान्तिकारी उसी में आने वाली क्रान्ति के अंकुर देख रहा है।”

समय बीतने के साथ एच.एस.आर.ए. के नेताओं का यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण परिपक्व होता गया। उनकी बहुसंख्या कम्युनिज़्म के आदर्शों के क़रीब आ गयी, जो व्यक्तिगत आतंकवादी कार्रवाइयों के बजाय जनता की कार्रवाई में भरोसा करते थे। चन्द्रशेखर आज़ाद भी यह महसूस करते थे कि “इस सोच में कुछ तो गड़बड़ है कि मुट्ठीभर बहादुर और आत्म-बलिदानी नौजवानों का दल अपनी कार्रवाइयों से पूरे राष्ट्रीय आन्दोलन को क्रान्तिकारी दिशा दे सकता है।” वह व्यापक जनान्दोलन की आवश्यकता और गुप्त आतंकवादी गतिविधियों की निरर्थकता के कायल हो चुके थे। आज़ाद यह मानते थे कि “हमारे काम में कहीं कुछ गड़बड़ी ज़रूर थी जिसकी वजह से उतना काम और बलिदान करने पर भी पूरे राष्ट्रीय आन्दोलन को हम क्रान्तिकारी दिशा नहीं दे सके थे।” सुखदेव ने भी साथियों को लिखे पत्र में ऐसा ही कहा है और यह साफ़ कर दिया है कि अब गुप्त गतिविधियाँ बन्द हो जानी चाहिए और खुला काम शुरू कर दिया जाना चाहिए क्योंकि अब जनता उनके आदर्शों को समझती है। अब बम धमाकों की ज़रूरत नहीं है। भगतसिंह ने जेल में कार्ल मार्क्स और लेनिन को पढ़ा था और रूस में बोल्शेविक क्रान्ति की कामयाबी का विस्तृत अध्ययन किया था। भारत में संघर्ष की सही राह क्या हो इसे लेकर बुनियादी सवाल उनके सामने उपस्थित थे। भविष्य के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक ढाँचे का चरित्र और स्वरूप क्या होना चाहिए? क्या गोरे आक़ाओं को उखाड़ फेंकने के बाद सत्ता की चाभी राजे-रजवाड़ों, नवाबों, सामन्तों, पुरोहितों, पूँजीपतियों और सूदख़ोरों के हाथ में रहेगी? भगतसिंह सोचते थे कि ये तत्त्व भारत में ब्रिटिश सत्ता के सबसे बड़े पिछलग्गू और सामाजिक आधार थे और जनता का शोषण करने और उसे दबाने-कुचलने में उनका साथ देते थे। भगतसिंह ने अच्छी तरह यह समझ लिया था कि साम्राज्यवाद के इन चाकरों को दूर किये बिना भारत की आज़ादी सिर्फ़ अमीरों, सम्प्रदायवादियों, दलालों-ग़द्दारों और ऊँची जातियों के अमीर तबक़ों के लिए रह जायेगी, और 95 प्रतिशत ग़रीब और कमज़ोर लोगों को इससे कुछ नहीं मिलेगा।

('बहरों को सुनाने के लिए' पुस्तक के कुछ अंश)

अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस (8 मार्च) के अवसर पर

कहाँ से पैदा होते हैं बलात्कारी,
हत्यारे, लम्पट
अमानवीय पशुवत जीव!
पूँजीवादी सभ्यता-संस्कृति की
जारज औलादें हैं
ये ज़हरीले नाग।
ये स्त्री-विरोधी परम्पराओं-रूढ़ियों के
बिलों-बाँबियों में छिपे रहते हैं,
जीते हैं रुग्ण संस्कृति की
नशीली खुराक पर,
लोभ-लाभ की संस्कृति और
अन्धी प्रतिस्पर्धा
इनके ज़हर को मारक बनाती है,
आम लोगों की कायरता और तटस्थता
इनकी हिम्मत बढ़ाती है,
स्त्री-शरीर को उपभोक्ता वस्तु
के रूप में परोसता मनोरंजन उद्योग
इनका उन्माद बढ़ाता है।

बेशक, इन ज़हरीले नागों का
फन कुचलना होगा,
पर इतना ही काफी नहीं होगा।
इन्हें क्षण-प्रतिक्षण
जन्म देने वाली
मानवद्रोही सामाजिक व्यवस्था
और उसकी रुग्ण संस्कृति
के विरुद्ध
एक लम्बी, फैसलाकुन लड़ाई
लड़नी होगी,
प्रतिगामी परम्पराओं-रूढ़ियों के
बिलों-बाँबियों को
नष्ट करना होगा
और शराफ़त की आड़ लेने वाले
कायर और तटस्थ लोगों की
आँखों के सामने
खड़े करने होंगे कुछ
जलते हुए प्रश्नचिह्न!

बहनो! साथियो!
अपनी सुरक्षा
घरों की चारदीवारियों में
क़ैद होकर नहीं की जा सकती।
बर्बरता वहाँ भी हम पर
हमला कर सकती है,
रूढ़ियाँ हमें तिल-तिलकर
मारती हैं वहाँ
अँधेरा हमारी आत्मा के कोटरों में
बसेरा बना लेता है।
हमें बाहर निकलना होगा
सड़कों पर और मर्दवादी
रुग्णताओं-बर्बरताओं का
मुकाबला करना होगा।
ग़ुलामी की यंत्रणा का सामना
नहीं किया जा सकता
स्वयं क़ैदी बनकर।

दिमागी ग़ुलामी की बेड़ियाँ तोड़ दो
चकनाचूर कर दो जाति और धर्म
की रूढ़ियों को।
ज़िन्दगी के फ़ैसले खुद लेना सीखो।
मत डरो ग़लतियों, पराजयों और जोखिमों से।
निराशा और निरुपायता की अँधेरी गुफा से,
निष्क्रियता और ठहराव की लौह दीवारों की
क़ैद से बाहर निकलो
सूरज की रोशनी और ज़िन्दगी के
कोलाहल के बीच,
सदियों से अपने दिलों में दबे
ज्वालामुखी को विस्फोट करने दो
प्रचण्ड वेग से बहता जिसका लावा
जलाकर राख कर दे
सड़ी-गली रूढ़ियों-रिवाजों-मान्यताओं को
और पूँजीवादी लूट की इस व्यवस्था
के साथ-साथ हमारी हजारों वर्ष पुरानी
नारकीय ग़ुलामी की ज़ंग खायी ज़ंजीरों को भी।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

200 मेहनतकशों की जान लेने वाली चमोली दुर्घटना सरकार और व्यवस्था की पैदाइश है!

– अपूर्व मालवीय

पिछली 7 फ़रवरी की सुबह चमोली ज़िले के ऋषिगंगा हाइड्रो इलेक्ट्रिक पॉवर प्रोजेक्ट पर काम कर रहे मज़दूरों की दिनचर्या सामान्य दिनों की तरह ही शुरू हो गयी थी। क़रीब 30-35 मज़दूर वहाँ काम कर रहे थे। लेकिन काम के एक घण्टे बाद ही सब कुछ बदल गया। वहाँ मशीन पर काम कर रहे एक मज़दूर कुलदीप पटवार को ऊपर पहाड़ से धूल और गर्द का एक बड़ा ग़ुबार नीचे आता हुआ दिखायी दिया। पहाड़ी होने के नाते वह समझ गये कि ये सामान्य ग़ुबार नहीं है बल्कि आने वाली मौत है। वह चिल्लाते हुए अपनी बायीं तरफ़ की पहाड़ी पर ऊपर भागे। बाक़ी के मज़दूरों ने भी देखा लेकिन ज़्यादातर मज़दूर मैदानी इलाक़ों से आने की वजह से पहाड़ पर ज़्यादा तेज़ी से नहीं चढ़ सके और पानी व मलबे के सैलाब में बह गये।

यह सैलाब ऋषिगंगा पॉवर प्रोजेक्ट को ध्वस्त करता, उसे भी अपने मलबे में मिलाता हुआ नीचे की तरफ़ और भी तेज़ी से बढ़ गया। नदी के किनारे एक चरवाहा अपनी भेड़-बकरियाँ चरा रहा था, वो भी अपनी भेड़-बकरियों सहित सैलाब में बह गया। ऋषिगंगा पॉवर प्रोजेक्ट के ठीक पाँच किलोमीटर नीचे धौलीगंगा पर एक और पॉवर प्रोजेक्ट है, तपोवन-विष्णुगाड़। वहाँ भी काम कर रहे मज़दूरों के ऊपर ये सैलाब मौत बनकर टूटा। इस एन.टी.पी.सी. के प्रोजेक्ट पर 176 मज़दूर काम कर रहे थे। यहाँ दो सुरंगों में तेज़ी से काम हो रहा था। सैलाब का मलबा इन दोनों सुरंगों में भी भर गया और इसमें काम कर रहे 40 से भी ज़्यादा मज़दूर उसके अन्दर ही दब कर मर गये। सैकड़ों मज़दूरों को ये सैलाब अपने साथ बहा ले गया। इस सैलाब की भयंकरता का अन्दाज़ा इस बात से ही लगाया जा सकता है कि जो बाँध पानी को रोकने के लिए बनाये जाते हैं, यह सैलाब उनको ही तोड़कर बहा ले गया, साथ ही ऋषिगंगा और धौलीगंगा पर बने 13 पुलों को भी अपने साथ बहा ले गया जो नदी से 30 फ़ीट ऊपर तक बने थे। इस हादसे में 200 से भी ज़्यादा जानें गयीं और क़रीब 33 गाँव मुख्यधारा से कट गये।

उन मरने वालों का कभी ज़िक्र भी न हो पायेगा जिन्हें ठेकेदार ट्रकों में ठूँस कर दूर राज्यों से लाये होंगे। उनके घर वाले मौत का कभी दावा भी न कर पायेंगे, उनका कहीं लेखा-जोखा भी नहीं मिलेगा।

कैसे हुआ हादसा?

भू-वैज्ञानिकों के अनुसार इस हादसे के दो कारण हो सकते हैं – हिमस्खलन या किसी ग्लेशियर झील का फटना। ऋषिगंगा से ऊपर या तो किसी तरह से हिमस्खलन हुआ हो और नीचे का इलाक़ा सीधे में गहरा है, तो बाँध उसे रोक ना पाया हो और बाँध को तोड़ते हुए पानी तेज़ी से नीचे गया हो।

लेकिन दूसरी सम्भावना ज़्यादा सही मानी जा रही है। वहाँ कोई ग्लेशियर झील बनी जो फट गयी। उत्तराखण्ड के 'साउथ फ़ेसिंग ग्लेशियर' मलबे से लदे होते हैं और धीरे-धीरे आगे बढ़ते हैं। इस वजह से रास्ते में जो मलबा मिलता है, वह उस पर ठहर-सा जाता है। ग्लेशियर के आख़िरी प्वाइण्ट (टोंग) पर आकर यह मलबा जब जमा हो जाता है, तो नीचे की तरफ़ एक बाँध का सा रूप ले लेता है। तापमान कम होने की वजह से उस मलबे के नीचे बर्फ़ भी होती है। उसके पीछे जो पानी जमा होता है, उसे ग्लेशियर झील कहते हैं। जब ये ग्लेशियर झील फटती है (हिमस्खलन या भूकम्प या किसी और वजह से), तो उसमें चूँकि बहुत मलबा होता है, इसलिए वह 'वॉटर कैनन' की तरह काम करती है और तबाही काफ़ी अधिक होती है। 2013 में आयी उत्तराखण्ड की केदारनाथ आपदा ऐसी ही एक छोटी ग्लेशियर झील के फटने से ही हुई थी। अन्तरिक्ष उपयोग केन्द्र, उत्तराखण्ड ने जो डेटा दिया है उसके अनुसार घटना के एक हफ़्ते पहले तक वहाँ कोई ग्लेशियर झील नहीं थी। वैसे तो ऐसी झील कुछ घण्टों में भी बन सकती है और कई बार सालों भी लग जाते हैं। इस कारण ऐसा लगता है कि जो झील बनी वो ज़्यादा बड़ी नहीं थी। नहीं तो तबाही की भयावहता का अन्दाज़ा भी नहीं लगाया जा सकता। **पर सवाल यह है कि ऐसी जगह पर हाइड्रोपावर प्रोजेक्ट को मंज़ूरी क्यों दी गयी, जहाँ हिमस्खलन और भूस्खलन के ख़तरे के बारे में पहले से पता था।**

अफ़ग़ानिस्तान से लेकर बंगाल की तीस्ता नदी के बीच फैले मध्य हिमालयी विशाल भूभाग में उत्तराखंड क्षेत्र की पहाड़ियाँ सबसे कमजोर आँकी गयी हैं। यहाँ की मिट्टी भुरभुरी है। ये चट्टानें हल्के कम्पन में ही दरक जाती हैं। इस इलाक़े में भारी निर्माण और पानी के विशाल कुण्ड जल प्रलय को न्योता देने के समान हैं।

तपोवन-विष्णुगाड़ जलविद्युत परियोजना की सुरंग दुनिया की सबसे भारी मशीनों से बनायी गयी है। इन मशीनों ने आसपास की पहाड़ियों को बेहद कमज़ोर कर दिया है। इनको सरकार की बनायी हुई क़ब्रें कहा जाये तो ग़लत नहीं होगा।

क्या यह हादसा रोका जा सकता था!

इसका सीधा जवाब देने से पहले इस घटना का चरित्र समझिए। इस घटना के दो पहलू हैं। एक प्राकृतिक और दूसरा आर्थिक-राजनीतिक। जब हम इसके आर्थिक-राजनीतिक पहलू पर बात करते हैं तो पता चलता है कि अन्धाधुन्ध पूँजीवादी विकास और मुनाफ़े की हवस ने ही इस बार भी सैकड़ों ज़िन्दगियों को लील लिया है।

ऋषिगंगा प्रोजेक्ट को जहाँ बनाया गया है वो इलाक़ा और भी संवेदनशील है। यह सही है कि ऋषि गंगा के ऊपर कहीं ग्लेशियर झील फटी लेकिन जो भयावहता पैदा हुई उसका कारण ऋषिगंगा पर बना बाँध था। बाँध के कैचमेण्ट एरिया के पानी ने ऊपर से आये मलबे के साथ और भी भयंकर रूप ले लिया। बाँध ऊपर से आये मलबे की मात्रा और वेग को सह नहीं पाया और टूट गया। जिस कारण तबाही और भी ज़्यादा हुई।

उत्ताखण्ड में लम्बे समय से बड़ी बाँध परियोजनाओं का विरोध हो रहा है। लेकिन सिर्फ़ बड़ी प्राइवेट कम्पनियों को मुनाफ़ा दिलाने के लिए सरकारें इन परियोजनाओं को चला रही हैं। यह पूरा हिमालय क्षेत्र बहुत ही संवेदनशील है। यहाँ की मिट्टी भुरभुरी और चट्टानें अभी कच्ची हैं। चौड़ी सड़कें, सुरंगें और बड़े बाँध बनाने के लिए जिन बड़ी-बड़ी ड्रिलिंग मशीनों और विस्फोटकों का इस्तेमाल किया जाता है, उससे पहाड़ों के अन्दर तक दरारें पड़ जाती हैं। पेड़ों की अन्धाधुन्ध कटाई से पहाड़ की मिट्टी अपनी पकड़ छोड़ देती है और भूस्खलन का ख़तरा बढ़ जाता है। अभी ऑल वेदर रोड बनाने के लिए ही 56 हज़ार पेड़ों को काट दिया गया है। इसके साथ ही, हिमालय रीजन भूकम्प प्रभावित ज़ोन में भी आता है। हल्के फुल्के भूकम्प यहाँ आते रहते हैं। लेकिन अगर कहीं इनकी भी तीव्रता बढ़ी और किसी बड़े बाँध के ऊपर उसका असर पड़ा तो फिर होने वाली तबाही को किसी भी तरह रोका नहीं जा सकता है।

देहरादून में स्थित वाडिया भू-वैज्ञानिक संस्थान के वैज्ञानिकों ने पिछले साल जून-जुलाई के महीने में एक अध्ययन के ज़रिये जम्मू-कश्मीर के कराकोरम समेत सम्पूर्ण हिमालयी क्षेत्र में ग्लेशियरों द्वारा नदियों के प्रवाह को रोकने और उससे बनने वाली झील के ख़तरों को लेकर चेतावनी जारी की थी। ग्लोबल वार्मिंग के कारण मौसम चक्र में व्यापक बदलाव आ चुका है। सर्दियों में अत्यधिक सर्दी और बर्फ़बारी और गर्मियों में अत्यधिक गर्मी ग्लोबल वार्मिंग के साफ़ संकेत हैं। उच्च हिमालयी क्षेत्रों में ग्लोबल वार्मिंग के कारण ही ग्लेशियरों की प्रकृति में भी व्यापक बदलाव देखने को मिल रहा है। इसके लिए 2010 में एक ग्लेशियोलॉजी सेण्टर बनाने की परियोजना पर काम शुरू हुआ। इसके लिए उत्तराखण्ड के मसूरी में ही 200 हेक्टेयर भूमि भी ले ली गयी और 211 करोड़ का बजट भी पास कर दिया गया। लेकिन पिछले साल 25 जुलाई को मोदी सरकार ने इस परियोजना को बन्द करने का निर्णय ले लिया।

अगर इस परियोजना को बन्द नहीं किया जाता और हिमालय के ग्लेशियरों पर अनुसन्धान को बढ़ावा दिया जाता तो सम्भव था कि समय रहते इस घटना पर नियंत्रण पाया जा सकता था या इसमें होने वाली मौतों और व्यापक क्षति को रोका जा सकता था। लेकिन इस सरकार के पास गाय, गोबर और गौ-मूत्र पर अनुसन्धान के अलावा वैज्ञानिक शोधों के लिए फ़ण्ड नहीं है। वैसे भी सरकारों को इन आपदाओं से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है। क्योंकि इन आपदाओं में ज़्यादातर मेहनतकश-मज़दूर ही मारे जाते हैं। सरकारों और पूँजीपतियों के लिए उनकी जान की क़ीमत कुछ भी नहीं है।

भारतीय मज़दूर सबसे ज़्यादा देर तक काम करते हैं, पर कमाते कम हैं

जिस बात को हर भारतीय मज़दूर अपने अनुभव से महसूस करता है, उसे अब अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी साबित किया है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की हालिया रिपोर्ट के मुताबिक, अफ़्रीका के कुछ सबसे ग़रीब देशों को छोड़ दें, तो भारत के मज़दूरों को सबसे कम मज़दूरी देकर उनसे सबसे ज़्यादा काम करवाया जाता है।

हालाँकि सभी सरकारी रिपोर्टों की तरह इस रिपोर्ट में बतायी गयी स्थितियाँ ज़मीनी सच्चाई से बहुत पीछे ही हैं। रिपोर्ट बताती है कि भारत में मज़दूरों को एक हफ़्ते में 48 घण्टे तक काम करना पड़ता है। यह आँकड़ा चीन में औसतन 46, ब्रिटेन में 36, अमेरिका में 37 और इज़राइल में 36 घण्टे प्रति हफ़्ते का है। असलियत यह है कि अधिकांश औद्योगिक क्षेत्रों में बहुसंख्यक मज़दूरों को रोज़ाना 10-12 घण्टे काम करना पड़ता है और ज़्यादातर जगहों पर सप्ताह की छुट्टी भी नहीं होती है। यानी मज़दूर सप्ताह में 60 से लेकर 84 घण्टे तक खटना पड़ता है। प्राइवेट कम्पनियों में काम करने वाले निचले दफ़्तरी कर्मचारियों, डिलीवरी वर्करों, सिक्योरिटी गार्ड, घरेलू कामगारों आदि के काम के हालात भी ऐसे ही होते हैं।

रिपोर्ट बताती है कि एशिया-प्रशांत क्षेत्र में बंगलादेश को छोड़कर भारतीय सबसे ज़्यादा काम करते हैं, लेकिन सबसे कम कमाते हैं। कुछ ग़रीब अफ़्रीकी देशों को छोड़कर भारतीय मज़दूरों को सबसे कम न्यूनतम वेतन मिलता है।

'वैश्विक वेतन रिपोर्ट रिपोर्ट 2020-21: कोविड-19 के समय में वेतन एवं न्यूनतम वेतन' नामक रिपोर्ट के मुताबिक देर तक काम कराने के मामले में भारत दुनिया में पाँचवे स्थान पर है। केवल गांबिया, मंगोलिया, मालदीव और कतर ही ऐसे देश हैं जहाँ भारत की तुलना में ज़्यादा देर तक काम कराया जाता है। हालाँकि इन देशों में भी काम करने वाली एक चौथाई जनसंख्या भारतीयों की है।

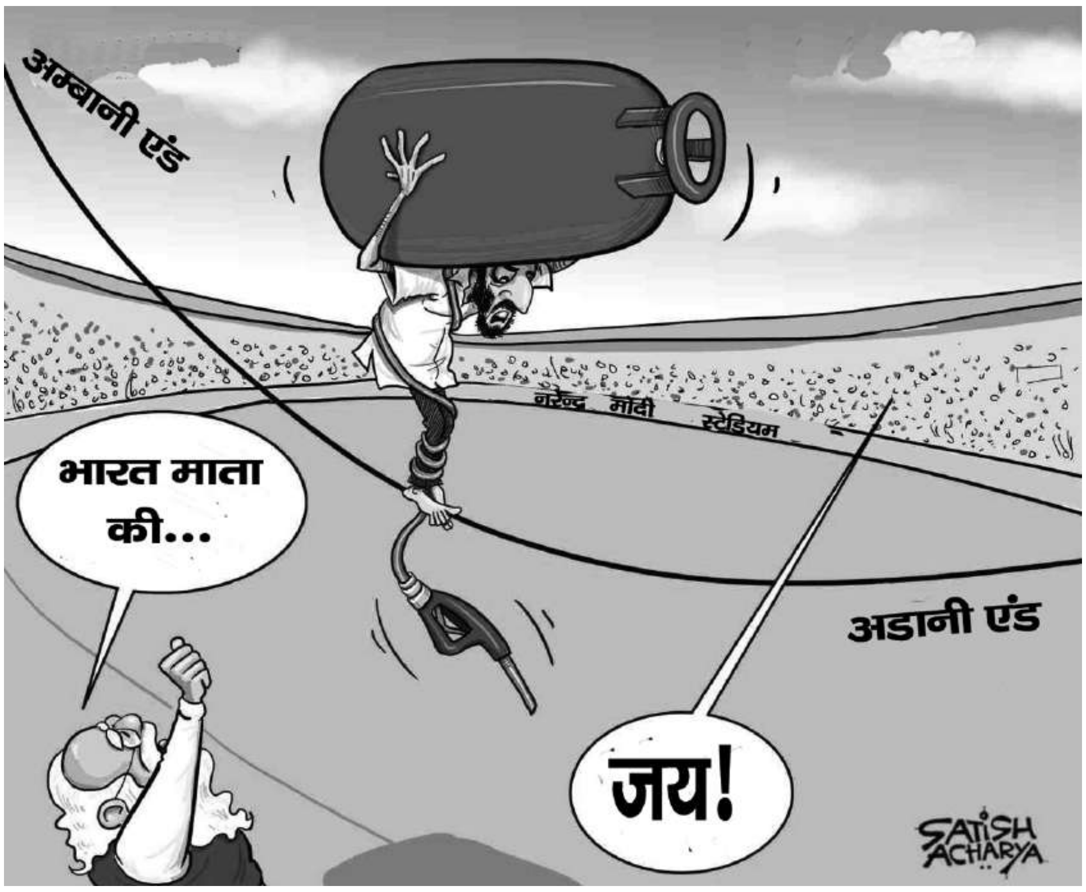

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006